सत्साहित्य-प्रकाशन

आश्रमवासियों से

—आश्रम-जीवन विषयक बोधप्रद विचार—

महात्मा गांधी

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सहमति से प्रकाशित

तीसरी बार : १९६०

मूल्य

चालीस नये पैसे

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

सन् १९३२ में अपने जेल-वास के समय महात्मा गांधी ने सत्याग्रहाश्रम के निवासियों के उपयोग के लिए जेल से अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार प्रकट किये थे। ये विचार आज भी उतने ही ताजे और मार्गदर्शक हैं। हमारी शिक्षा कैसी होनी चाहिए, सफाई क्यों आवश्यक है, त्याग की कितनी महिमा है, प्रार्थना हमारे जीवन का बुनियादी अंग क्यों है, अहिंसा और सत्य का पालन हम किस प्रकार कर सकते हैं, विद्याभ्यास तथा वाचन और विचार किस प्रकार होना चाहिए, आदि-आदि बातों पर उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है।

जो आश्रम-जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हींके लिए यह पुस्तक महत्व की नहीं है, बल्कि जो भी नैतिक बल प्राप्त करना चाहते हैं, अपने जीवन को ऊपर उठाना चाहते हैं, उनके लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त लाभदायक है।

—मंत्री

निवेदन

गांधीजी के और हमारे राष्ट्रीय जीवन के अपूर्व अवसर पर उनके पत्रों का यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि ये पत्र आश्रमवासियों को ही संबोधित किये गए हैं, तथापि जो अपनेको आश्रमवासी मानते हैं या आश्रम-जीवन का सद्भाव से अभ्यास करते हैं उनको भी ये बोधप्रद होंगे, इस मान्यता से यह पत्र-संग्रह प्रकाशित किया गया है।

गत वर्ष के जेलवास के समान इस बार भी गांधीजी ने आश्रमवासियों के नाम साप्ताहिक प्रवचन लिख भेजने का नियम जारी रखा। उसके अनुसार आजतक जितने प्रवचन आ गये हैं, उनका यह संग्रह है।

पिछले वर्ष उन्होंने एक विषय का ही लगातार सिलसिलेवार विवेचन किया था। इसके परिणामस्वरूप 'व्रतविचार' या 'मंगलप्रभात' और गीता-बोध' के १० अध्याय तैयार हो गये थे। इस बार शुरू में उन्होंने 'गीताबोध' के बाकी के अध्यायों को पूरा किया। इसके बाद किसी एक विषय पर सिलसिलेवार पत्र लिखने के बजाय आश्रम-जीवन विषयक छुटपुट विचारों को एक दूसरी तरह लिख भेजते रहे। इस प्रकार से अलग-अलग दिखाई देने पर भी इन प्रवचनों में एक ही विषय पर अनेक पहलुओं से चर्चा की गई है। विचक्षण वाचक को इनमें यह मालूम हुए बिना नहीं रहेगा।

...हरिजनोद्धार के लिए की गई अनशनव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा के आरम्भ के समय तक के प्रवचनों का इस संग्रह में समावेश हुआ है।

चरखा द्वादशी सं १९८८
सत्याग्रहाश्रम
साबरमती

—नारणदास खु. गांधी
मंत्री, उद्योग मंदिर

विषय-सूची

आश्रमवासियों से

: १ :

मृत्युमित्र

यरवदा-मन्दिर

२६-२-३२

साक्रेटिस (सुकरात) एथेंस (यूनान) का एक बुद्धिमान पुरुष हो गया है। उसके नये, पर नीतिवर्धक विचार राजशक्तिधारियों को न रुचे। इससे उसे मौत की सजा मिली। उस जमाने में उस देश में विषपान करके मर जाने की सजा भी दी जाती थी। साक्रेटिस को मीराबाई की तरह ज़हर का प्याला पीना था। उसपर मुकदमा चलाया गया। उस वक्त साक्रेटिस ने जो अन्तिम वचन कहे उसके सार पर विचार करना है। वह हम सबके लिए शिक्षा लेने लायक है। साक्रेटिस को हम सुकरात कहते हैं, अरब भी इसी नाम से पुकारते हैं।

सुकरात ने कहा, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि भले आदमी का इस लोक या परलोक में अहित होता ही नहीं। भले आदमियों और उनके साथियों का ईश्वर कभी त्याग नहीं करता। फिर मैं तो यह भी मानता हूं कि मेरी या किसीकी भी मौत अचानक नहीं आती। मृत्युदंड मेरे लिए सजा नहीं है। मेरे मरने और उपाधि

से मुक्त होने का समय आ गया है। इसीसे आपने मुझे ज़हर का प्याला दिया है। इसीमें मेरी भलाई होगी और इससे मुझपर अभियोग लगानेवालों या मुझे सजा देने-वालों के प्रति मेरे मन में क्रोध नहीं है। उन्होंने भले ही मेरा भला न चाहा हो, पर वे मेरा अहित न कर सके।

"महाजन-मंडल से मेरी एक विनती है : मेरे बेटे अगर भलाई का रास्ता छोड़कर कुमार्ग में जायं और धन के लोभी हो जायं तो जो सजा आप मुझे दे रहे हैं वही उन्हें भी दें। वे दंभी हो जायं, जैसे न हों वैसे दिखाने की कोशिश करें, तो भी उनको दंड दें। आप ऐसा करेंगे तो मैं और मेरे बेटे मानेंगे कि आपने शुद्ध न्याय किया।"

अपनी संतान के विषय में सुकरात की यह मांग अद्भुत है। जो महाजन-मंडल न्याय करने को बैठा था। वह अहिंसा-धर्म को तो जानता ही न था। इससे सुकरात ने अपनी संतान के बारे में उपर्युक्त प्रार्थना की, अपनी सन्तान को चेताया और उससे उसने क्या आशा रखी थी यह बताया। महाजनों को मीठी फटकार बताई, क्योंकि उन्होंने सुकरात को उसकी भलमनसी के लिए सजा दी थी। सुकरात ने अपने बेटों को अपने रास्ते पर चलने की सलाह देकर यह जताया कि जो रास्ता उसने एथेंस के नागरिकों को बताया, वह उसके लड़कों के लिए भी है। और वह यहांतक कि अगर वे उस रास्ते पर न चलें तो वे दंड के योग्य समझे जायं।

: २ :

शिक्षा के विषय में कुछ विचार

यरवदा-मंदिर

२८–३–३२

जॉन रस्किन उत्तम प्रकार का लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहान्त १८८०[1] के आसपास हुआ। अधिकांश आश्रमवासियों को यह बात तो मालूम होनी ही चाहिए कि उसकी एक पुस्तक का मुझपर बहुत ही गहरा असर हुआ और उससे ही प्रेरणा प्राप्त कर मैंने अपने जीवन में महत्त्व का परिवर्तन एक क्षण में कर डाला। सन् १८७१ में उसने केवल श्रमिक वर्ग को सामने रखकर मासिक रूप में पत्र या लेखमाला लिखना आरंभ किया था। इन पत्रों की प्रशंसा मैंने टाल्स्टाय के किसी निबन्ध में पढ़ी; पर अबतक मैं उसके अंकों को प्राप्त न कर सका था। रस्किन की प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्य के विषय पर एक पुस्तक मेरे हाथ आई थी, वह मैंने यहां पढ़ी। इसमें भी इन पत्रों का उल्लेख हुआ है। उसे देखकर मैंने विलायत में रस्किन की एक शिष्या को लिखा। वही उक्त पुस्तक की लेखिका है। वह बेचारी गरीब ठहरी। अतः ये पुस्तकें कहां से भेजती? मूर्खता या मिथ्या विनयवश मैंने उसे यह न लिखा कि आश्रम से पैसे मंगा लेना। उस भली महिला ने मेरा

---

[1] जान रस्किन का जन्म १८१९ ई० में और मृत्यु १९०० ई० में हुई। —अनु०

पत्र अपने एक अपेक्षाकृत समर्थ मित्र के पास भेज दिया। वह 'स्पेक्टेटर' पत्र के संपादक थे। उनसे मैं विलायत में मिल भी चुका था। रस्किन के उक्त पत्र पुस्तकाकार चार खंडों में प्रकाशित हुए हैं। वह उन्होंने भेज दिये। उनमें का पहला भाग मैं पढ़ रहा हूं। उसके विचार उत्तम हैं और हमारे बहुत-से विचारों से मिलते हैं। यह मेल इतना है कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है और आश्रम में जो कुछ हम आचरण करते हैं वह सब रस्किन के इन निबन्धों से चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्द का अर्थ तो समझ में आया ही होगा। जो विचार या आचार जिसके पास से लिया गया हो उसका नाम छिपाकर अपनी कृति है यह दिखाया जाय तो वह चुराया हुआ कहा जायगा।

रस्किन ने बहुत लिखा है। उसमें से थोड़ा ही इस वक्त देना चाहता हूं। रस्किन का कहना है कि यह जो कहा जाता है कि बिल्कुल अक्षरज्ञान न होने से कुछ भी होना अच्छा है, उसमें गंभीर भूल है। उसका स्पष्ट मत है कि जो शिक्षा सच्ची है, जो आत्मा की पहचान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही ग्रहण करनी चाहिए। अनन्तर उसने कहा है कि इसी जगत् में मनुष्य-मात्र को तीन पदार्थों और तीन गुणों की आवश्यकता है। जो इन्हें पनपाना नहीं जानता वह जीने का मंत्र ही नहीं जानता। अतः ये छः चीजें ही शिक्षा की नींव-रूप होनी चाहिए। इसलिए मनुष्यमात्र को बचपन से—वह लड़का हो या लड़की—यह जान लेना ही चाहिए

कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहना चाहिए, उन्हें किस तरह रखना होता है और उनका क्या उपयोग है। वैसे ही तीन गुणों में उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेम को गिनाया है। जिसको सत्यादि गुणों की कदर नहीं है, जो सुन्दर वस्तु को पहचान नहीं सकता, वह अपने घमंड में भटकता है और आत्मानंद नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार जिसमें आशावाद नहीं है, अर्थात् जो ईश्वरीय न्याय के विषय में शंकित रहता है, उसका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिसमें प्रेम नहीं यानी अहिंसा नहीं, जो जीवमात्र को अपना कुटुम्बी नहीं मान सकता, वह जीने का मंत्र कभी साध नहीं सकता।

इस विषय पर रस्किन ने अपनी चमत्कारभरी भाषा में बहुत विस्तार से लिखा है। इसे तो किसी वक्त अपने समाज के समझने लायक रूप में लिख सकूं तो अच्छा ही है। आज तो इतने से ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही यह कह देना चाहता हूं कि जिन बातों को हम अपने गंवारू शब्दों में सोचते आये हैं और जिन्हें आचार में उतारने का यत्न कर रहे हैं लगभग उन्हीं सबको रस्किन ने अपनी प्रौढ़ और सुसंस्कृत भाषा में, अंग्रेजी-भाषी जनता समझ सके इस रीति से, प्रकट किया है। यहां मैंने तुलना दो भिन्न भाषाओं की नहीं की है, बल्कि दो भाषाशास्त्रियों की की है। रस्किन के भाषाशास्त्र के ज्ञान का मुकाबला मुझ-जैसा आदमी नहीं कर सकता। पर ऐसा समय अवश्य आयेगा जब

कि मातृभाषा का प्रेम बढ़ेगा, उस समय भाषा के पीछे मेहनत करनेवाले विद्वान रस्किन की प्रभावशाली अंग्रेजी जैसी जोरदार गुजराती लिख सकेंगे।

: ३ :

आकाश-दर्शन—१

यरवदा-मन्दिर
११-४-३२

सत्य के पुजारी का रस अनन्त होता है। सत्य-नारायण की झांकी के लिए वह अपने-आपको कभी बूढ़ा नहीं मानता। जो हर काम सत्यरूप ईश्वर के ही प्रीत्यर्थ करता है, जो सर्वत्र सत्य को ही देखता है, उसके लिए बुढ़ापा विघ्नरूप नहीं होता। सत्यार्थी अपने ध्येय को ढूंढने के लिए अमर है, अजर है।

यह सुन्दर स्थिति मैं तो बरसों से भोग रहा हूं। जिस ज्ञान से जान पड़े कि मैं सत्यदेव के अधिक पास पहुच रहा हूं, उसके पीछे जाने में बुढ़ापा मुझे बाधक नही हुआ। इसकी ताजा मिसाल मेरे लिए आकाश-दर्शन है। आकाश का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा तो अन्तर में अनेक बार उपजी, पर मैंने यह मान लिया था कि मेरे और काम मुझे इस ओर लगने की इजाजत न देंगे। यह खयाल गलत भले ही हो, पर जबतक मेरा मन अपनी भूल न देख ले तबतक तो वह मेरे लिए रुकावट बनेगी ही। सन् '२२ के कारावास में भाई शंकरलाल को प्रेरणा करनेवाला बहुत

करके मैं ही था। उस विषय की पुस्तकें मंगाई गई। भाई शंकरलाल ने तो इतनी जानकारी कर ली कि जितने से उन्हें संतोष हो जाय। मुझे फुर्सत न मिली।

सन् ३०-३१ में काकासाहब का सत्संग मिला। उन्हें इस विषय का अच्छा ज्ञान है। पर मैंने उनसे उसे न पाया। इसलिए कि उस वक्त मुझे सच्ची जिज्ञासा न थी। १९३१ में कारावास के आखिरी महीने में यकायक शौक जगा। बाह्य दृष्टि से जहां सहज ही ईश्वर रहता हो उसका निरीक्षण मैं क्यों न करूं? पशु की तरह आंखें महज देखा करें, पर जिसे देखें वह विशाल दृश्य ज्ञानतन्तु तक न पहुंचे, यह कैसा दयनीय है? ईश्वर की महान् लीला के निरखने का यह सुयोग कैसे जाने दिया जाता? यों आकाश को पहचान लेने की जो तीव्र इच्छा उपजी उसे अब छिपा रहा हूं और यहांतक आया हूं कि आश्रमवासियों को मेरे मन में उठनेवाली तरंगों में साझी बनाये बिना अब नहीं रहा जाता।

हमें बचपन से यह सिखाया गया है कि हमारा शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु नाम के पंच-महाभूत का बना हुआ है। इन सभीके विषय में हमें थोड़ा-बहुत ज्ञान होना ही चाहिए, फिर भी इन तत्त्वों के विषय में हमें बहुत थोड़ी जानकारी है। इस समय तो हमें आकाश के विषय में ही विचार करना है।

आकाश के मानी हैं अवकाश—खाली जगह। हमारे शरीर में अवकाश न हो तो हम क्षणभर भी न

जी सकें। जो बात शरीर के विषय में है वही जगत् के विषय में भी समझनी चाहिए। पृथ्वी अनन्त आकाश से घिरी हुई है, हम अपने चारों ओर जो आसमानी रंग की चीज देखते हैं वह आकाश है। पृथ्वी के छोर–सीमा है। वह ठोस गोला है। उसकी धुरी ७६०० मील लम्बी है, पर आकाश पोला है। उसकी धुरी मानें तो उसका कोई ओर-छोर न होगा। इस अनन्त आकाश में पृथ्वी एक रजकण के समान है और उस रजकण पर हम तो रजकण के भी ऐसे तुच्छ रजकण हैं कि उसकी कोई गिनती ही नहीं हो सकती। इस प्रकार शरीर-रूप से हम शून्य हैं, यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति या अल्पोक्ति नहीं। हमारे शरीर के साथ तुलना करते हुए चींटी का शरीर जितना तुच्छ है पृथ्वी के साथ तुलना करने में हमारा शरीर उससे हजारों गुना तुच्छ है, तब उसका मोह क्यों हो ? वह छूट जाय तो शोक क्यों करें ?

पर इतना तुच्छ होते हुए भी इस शरीर की भारी कीमत है, क्योंकि वह आत्मा का और हम समझें तो परमात्मा का—सत्यनारायण का—निवासस्थान है।

यह विचार अगर हमारे दिल में बसे तो हम शरीर को विकार का भाजन बनाना भूल जायं; पर अगर हम आकाश के साथ ओतप्रोत हो जायं और उसकी महिमा तथा अपनी अधिकाधिक तुच्छता को समझ लें तो हमारा सारा घमंड चूर हो जाय। आकाशमें जिन असंख्य दिव्य गणों के दर्शन होते हैं वे न हों तो हम भी न हों। खगोल

वेत्ताओं ने बहुत खोज की है, फिर भी हमारा ग्राकाश-विषयक ज्ञान नहीं के बराबर है। जितना है वह हमें स्पष्ट रीति से बताता है कि ग्राकाश में सूर्यनारायण एक दिन के लिए भी ग्रतंद्रित तपश्चर्या बंद कर दें तो हमारा नाश हो जाय। वैसे ही चंद्र ग्रपनी शीत किरणें लौटा ले तो भी हमारा यही हाल होगा ग्रौर ग्रनुमान से हम कह सकते हैं कि रात्रि के आकाश में जो ग्रसंख्य तारागण हमें दिखाई देते हैं उन सबका इस जगत् को बनाये रखने में स्थान है। इस प्रकार इस विश्व में संपूर्ण प्राणियों के साथ, संपूर्ण दृश्यों के साथ हमारा बहुत घना संबंध है और हम एक-दूसरे के सहारे टिक रहे हैं। अतः हमें अपने ग्राश्रयदाता आकाश में विचरनेवाले दिव्य गणों का थोड़ा परिचय कर ही लेना चाहिए।

इस परिचय का एक विशेष कारण भी है। हमारे यहां कहावत है—"दूर के ढोल सुहावने।" इसमें बहुत सचाई है। जो सूर्य हमसे इतनी दूर रहकर हमारा रक्षण करता है उसी सूर्य के पास जाकर हम बैठें तो उसी क्षण भस्म हो जायं। यही बात ग्राकाश में बसनेवाले दूसरे गणों की भी है। ग्रपने पास रहनेवाली ग्रनेक वस्तुग्रों के गुण-दोष हम जानते हैं, इससे कभी-कभी हमें उनसे विरक्ति होती है, दोषों के स्पर्श से हम दूषित भी होते हैं, ग्राकाश के देवगण के हम गुण ही जानते हैं, उनको निहारते हम थकते ही नहीं, उनका परिचय हमारे लिए हानिकर हो ही नहीं सकता और इन देवों का ध्यान करते हुए हम ग्रपनी कल्पनाशक्ति को नीति-

पोषक विचारों से जितनी दूर ले जाना हो उतनी दूर ले जा सकते हैं।

इसमें तो शंका ही नहीं कि आकाश के और अपने बीच हम जितना पर्दा खड़ा करते हैं उतने ही अंश में अपनी देह, मन और आत्मा की हानि पहुंचाते हैं, हम स्वाभाविक रीति से रहते हों तो चौबीसों घंटे आसमान के नीचे ही रहें। यह न हो सके तो जितने समय रह सकते हों उतने समय रहें। आकाश-दर्शन अर्थात् तारा-दर्शन तो रात में ही हो सकता है और सबसे अच्छा तो सोते समय हो सकता है। अतः जो इस दर्शन का पूरा लाभ उठाना चाहे उसे तो सीधे आकाश के नीचे ही सोना चाहिए। आसपास ऊंचे मकान या पेड़ हों तो वे इस दर्शन में विघ्न डालते हैं।

बच्चों को और बड़ों को भी नाटक और उनमें दिखायें जानेवाले दृश्य बहुत रुचते हैं; पर जिस नाटक की योजना प्रकृति ने हमारे लिए आकाश में की है उसको मनुष्यकृत एक भी नाटक नहीं पा सकता। फिर नाटकशाला में आंखें बिगड़ती हैं, फेफड़ों में गंदी हवा जाती है, और आचरण के बिगड़ने का भी बहुत डर रहता है। इस प्राकृतिक नाटक में तो लाभ-ही-लाभ है। आकाश को निहारने से आंखों को शांति मिलती है। आकाश के दर्शन के लिए बाहर रहना ही होगा, इसलिए फेफड़ों को शुद्ध हवा मिलेगी। आकाश को निहारने से किसीका आचरण बिगड़ता आज तक नहीं सुना गया। ज्यों-ज्यों इस ईश्वरी चमत्कार का ध्यान

किया जाता है त्यों-त्यों आत्मा का विकास होता है। जिसके मन में रोज रात को सपने में मलिन विचार आते हों, वह बाहर सोकर आकाश-दर्शन में लीन होने का यत्न कर देखे। उसे तुरंत निर्दोष निद्रा का आनंद मिलेगा। आकाश में अवस्थित दिव्य गण मानो ईश्वर का मूक स्तवन कर रहे हों। हम जब इस महादर्शन में तन्मय हो जायंगे तब हमारे कान उसको सुनते जान पड़ेंगे। जिसके आंखें हों वह इस नित्य नवीन नृत्य को देखे। जिसके कान हों वह इन अगणित गंधर्वों का मूक गान सुने।

आइये, अब हम इनके बारे में कुछ जानें या मुझे जो बहुत थोड़ा मिला है, उसमें सब साथियों को साझी बनाऊं। सच पूछिये तो पृथ्वी आदि के विषय में थोड़ा सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आकाश-दर्शन किया जाय तो ठीक कहा जायगा। हो सकता है कि मैं जो लिखनेवाला हूं वह सब काकासाहब के संपर्क में आये हुए आश्रम के बालक जानते हों। ऐसा हो तो अच्छा ही है। मैं आश्रम के छोटे-बड़े, नये-पुराने सबके लिए लिख रहा हूं। उसमें जिसको रस मिले उसके लिए तो यह विषय बिल्कुल ही आसान हो जायगा।

प्रार्थना के बाद तुरंत आकाश-दर्शन करना अच्छा होगा। इसमें एक बार बीस मिनट से अधिक समय देने की जरूरत नहीं। जो समझेगा वह इसे प्रार्थना का अंग मानेगा ही। बाहर सोनेवाला अकेले जितनी देर ध्यान करना हो करे। थोड़ी ही देर में उसी ध्यान में

वह सो जायगा। रात में नींद टूटे तो फिर थोड़ी देर दर्शन कर ले। आकाश प्रतिक्षण फिरता दिखाई देता है। इससे क्षण-क्षण में उसके दर्शन बदला ही करते हैं।

आठ बजे आकाश की ओर देखिये तो पश्चिम में एक भव्य आकृति के दर्शन होंगे।
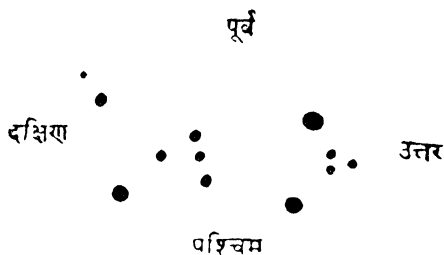
यह आकृति पश्चिम में होगी। मैं पूरब में सिर रखकर सामने देख रहा हूं। इस तरह देखनेवाला इस आकृति को भूल सकता ही नहीं। इन दिनों उजाला पाख है, इसलिए यह तारामंडल और कई दूसरे भी कुछ धूमिल दिखाई देते हैं। फिर भी यह मंडल इतना तेजस्वी है कि मुझ-जैसे नौसिखिये को भी उसे ढूंढ लेने में कठिनाई नहीं होती। इसके विषय में हमारे यहां और पश्चिम में लोगों का क्या खयाल है, यह पीछे बताऊंगा। इस वक्त तो इतना ही कहूंगा कि इस मंडल के स्थान का वर्णन वेद में देखकर लोकमान्य तिलक महाराज वेद के काल की खोज कर सके थे। आश्रम के पुस्तक-संग्रह में स्वर्गवासी दीक्षितजी की पुस्तक है।

उसमें तो बहुत बातें बताई गई हैं। मेरा काम तो रस उत्पन्न कर देना मात्र है, पीछे तो आश्रमवासियों से मैं अधिक सीख सकूंगा। मेरे लिए तो ये नक्षत्र ईश्वर के साथ संबंध जोड़ने के एक साधन हो गये हैं। आश्रम-वासियों के लिए भी हों।

"जैसे (चरखे से) सूत निकलता है वैसे तू रह और जैसे बने वैसे हरि को प्राप्त कर।"[1]

: ४ :

आकाश-दर्शन—२

यरवदा-मंदिर

१८-४-३२

पिछली बार तारा-मंडल का जो चित्र भेजा है उसके विषय में अनेक कल्पनाएं हैं। इस मंडल के चित्रों में से एक भी सम्पूर्ण नहीं होता। जितने तारे चित्र में दिखाई देते हैं उनसे कहीं अधिक उसमें होते हैं। इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि हर आदमी अपने-अपने लिए चित्र बनाये और जितने तारे खाली आंख से दिखाई दें उनके चिह्न बना ले। इससे तारों को पहचानने की शक्ति तुरन्त बढ़ जायगी और नक्शों में जो तस्वीरें आती हैं उनकी बनिस्बत अपने हाथों अपने लिए खींचा हुआ चित्र बढ़िया होगा, क्योंकि अलग-अलग जगहों से देखने में थोड़ा-थोड़ा फर्क तो पड़ता ही है। हर आदमी

---

[1]गुजराती सन्त कवि अक्खा भगत (१६१५-१६७४ ई०) की एक पंक्ति का भाग।—अनु०

नियत स्थान से नियत समय पर निरीक्षण करे तो ज्यादा अच्छा है। यह सूचना नक्शे के बारे में और आरम्भ करनेवाले के लिए है। आप एक बार अच्छी तरह नक्षत्रों की पहचान कर लें तो फिर कहीं भी हों अपने इन दिव्य मित्रों या दिव्य गणों को तुरन्त पहचान लेंगे।

मद्रास के 'हिन्दू' दैनिक के साथ एक साप्ताहिक निकलता है, बम्बई के 'टाइम्स' के साथ भी निकलता है। दोनों में हर महीने दिखाई देनेवाले तारक-मंडलों के नक्शे छपा करते हैं। 'हिंदू' में हर महीने के पहले हफ्ते में और 'टाइम्स' में दूसरे हफ्ते में निकलता है। इनमें से कोई नक्शा हाथ आ जाय तो उसमें हमें बहुत कुछ मिल जायगा। 'कुमार' (गुजराती मासिक) का सौवां या शती अंक निकलनेवाला है, उसमें भाई हीरालाल शाह ने इस विषय पर लेख भेजा है। उनका अध्ययन गहरा मालूम होता है। यह लेख जिसे देखना हो वह देख जाय। मैं तो इस लेख के बाद इस विषय पर अधिक न लिखूंगा। मैं आकाश-दर्शन किस रीति से कर रहा हूं इसको यहां थोड़ा अधिक स्पष्ट करूंगा। इससे आगे आऊं तो इस हफ्ते में जो दूसरी चीजें लिखने को हैं वे रह जायंगी। प्रसंगवश कुछ भेज दूं तो वह अलग होगा, या फिर किसीके प्रश्न पर भेजूं।

जिस नक्षत्र का चित्र मैंने दिया है, उसका नाम अपने यहां मृग या मृगशीर्ष है। उसीपर से हमारे अगहन महीने का नाम मार्गशीर्ष—मगसिर—पड़ा है। हमारे महीनों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर से पड़े

हैं। मृग-नक्षत्र को पश्चिम में 'ओरायन' कहते हैं। यह शिकारी है। इसके पूरब में दो सीधी रेखाओं में बहुत तेजस्वी तारे हैं। उनके शिकारी के कुत्ते होने की कल्पना की गई है। जो पश्चिम में है वह बड़ा और जो उत्तर में है वह छोटा कुत्ता है। पूरब की ओर और दक्षिण में शिकारी के चौथे कोने के तारे के नीचे जो नक्षत्र दिखाई देता है वह खरगोश मान लिया गया है। कुत्ते उसकी ओर दौड़ते हैं। बीच में जो तीन तारे हैं वे शिकारी के कमरबन्द के तीन रत्न हैं।

ऐसी आकृतियां भी खींची गई हैं। बड़े कुत्ते को हमारे यहां लुब्धक और उपर्युक्त तीन तारों को मृग का पेट कहते हैं। उसके दक्षिण में जो तारा है वह लुब्धक का छोड़ा हुआ बाण है। उत्तर की ओर चतुष्कोण के बाहर के तीन तारे मृग के सिर हैं। यह सारी कल्पना खासी मनोरंजक है। उसकी उत्पत्ति के विषय में बहुत लिखा गया है। उसमें से बहुत ही थोड़ा मैं पढ़ पाया हूं।

आकाश में ऐसी आकृति बिल्कुल नहीं है। वह हमें जितनी नजदीक दिखाई देती है उतनी नजदीक भी नहीं है। ये तारे तारे नहीं, बल्कि सूर्य से भी बड़े सूर्य है। करोड़ों मील दूर होने के कारण वे आकाश में बूंद की तरह झलकते हैं। इन सूर्यों के विषय में हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है, पर अपढ़-से-अपढ़ के लिए भी ये तारागण मित्र के प्रयोजन की पूर्ति करते हैं। क्षण भर उनकी ओर दृष्टि की कि तुरन्त देखनेवाला चाहे तो अपने सारे दुःख-दर्द भूल जाय और भगवान की महिमा

गाने लगे । तारों को वह ईश्वर के दूत मान सकता है, जो सारी रात हमारी रखवाली किया करते हैं और हमें आश्वासन देते हैं । यह तो सत्य सिद्ध हुआ है । तारे सूर्य हैं, बहुत दूर हैं, आदि बुद्धि के प्रयोग हैं । वे हमें ईश्वर की ओर ले जाने में जो सहायता देते हैं वह अवश्य हमारे लिए पूरा सत्य है । शास्त्रीय रीति से हम जल को अनेक रीतियों से पहचानते हैं, पर उस ज्ञान का शायद कोई उपयोग नहीं करते । वह प्राण और शरीर को साफ-सुथरा रखने की चीज है, यह ज्ञान और उसका यह उपयोग हमारे लिए बड़े ही काम के हैं और हमारे लिए यह उपयोग सत्य है । फिर वस्तुतः वह कोई दूसरा ही पदार्थ हो और उसका इससे अधिक उपयोग हो सकता हो तो अच्छा ही है । यही बात तारा-गण के विषय में है । उनके उपयोग अनेक हैं । मैंने तो मुझे उनका जो प्रधान गुण जान पड़ा उसका ही मनन और तदनुसार उपयोग सुझाया है । जान पड़ता है, पीछे कालक्रम से अनेक प्रकार के दूसरे वर्णन उसमें मिल गये और आख्यायिकाएं उत्पन्न हुईं । इन सबको हम इस विषय में रुचि बढ़ाने के लिए अवश्य पढ़ें पर जो मूल उपयोग मैंने सुझाया है उसको न भूलें ।

मृग के उत्तर में दो दूसरे मंडल हैं, उनकी पहचान हम कर लें—

इनमें बड़ा मंडल सप्तर्षि है । छोटे को ध्रुव मत्स्य कहते हैं । दोनों में सात-सात तारे दिये हैं, पर सप्तर्षि में दूसरे बहुत-से हैं वे 'टाइम्स' और 'हिंदू' के चित्रों
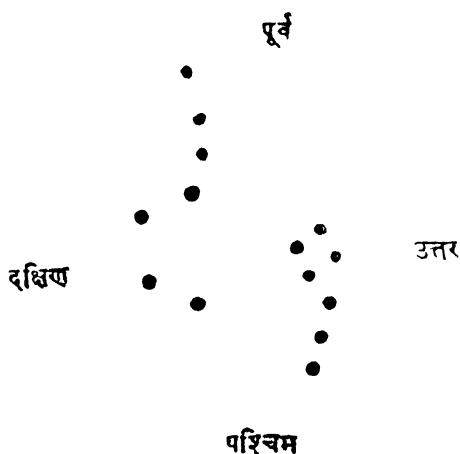
में मौजूद हैं। ध्रुव मत्स्य में दूसरे तारे नहीं दिखाई देते। इन दिनों उजाले पक्ष में तो शायद तीन ही दिखाई देंगे— दो चतुष्कोण के और एक सिरे का, जिसका नाम ध्रुव है। ध्रुव ऐसा तारा है जो लगभग अचल रहता है और इससे पिछले जमाने में तो नाव-जहाज चलानेवालों को बड़ी मदद मिलती थी। ये दोनों मंडल ध्रुव की प्रदक्षिणा ही करते हुए जान पड़ते हैं। इन दिनों इनकी गति देखने का बड़ा आनन्द आता है। सारी रात इनका स्थान बदलता रहता है। इसको नोट करते जायं तो इनके मार्ग का नक्शा खासा कुंडलाकार होगा। पश्चिम में इन्हें बड़ा रीछ और छोटा रीछ कहते है। एक पुस्तक में तो इनके सुंदर चित्र भी मैंने देखे हैं। बड़े रीछ को हल की उपमा भी देते हैं। सप्तर्षि रात के घड़ियाल का काम देते हैं। थोड़ा अभ्यास हो जाने के बाद सप्तर्षि

की गति का समय अवश्य जाना जा सकता है।

पर अमूल्य होते हुए भी ये उपयोग और ये नाम मूल उपयोग के सामने मुझे तुच्छ-से लगते हैं। हमें चाहिए कि आकाश जैसा स्वच्छ है वैसे हम स्वच्छ हों, तारे जैसे तेजस्वी हैं वैसे हम तेजस्वी हों। वे जैसे ईश्वर का मूक स्तवन करते जान पड़ते हैं वैसे हम करें। वे जैसे अपना रास्ता एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते वैसे हम भी अपना कर्तव्य न छोड़ें।

: ५ :

गोशवारे की आवश्यकता

यरवदा-मंदिर

२५–४–३२

आश्रम का इतिहास लिखते समय मन में अनेक विचार आते हैं, अपनी अनेक त्रुटियों की ओर ध्यान जाता है। उससे मुझे ऐसा लगता है कि हमें समय-समय पर अपना गोशवारा तैयार करना चाहिए। व्यापारी अपने व्यापार का हर रोज गोशवारा—हिसाब का खुलासा—तैयार करता है, हर महीने करता है, हर छठे महीने करता है और बड़ा गोशवारा हर साल बनाता है। हमारा व्यापार आध्यात्मिक माना जायगा, इसलिए आध्यात्मिक गोशवारा बनाना उचित है। हरेक को अपना-अपना तैयार करना चाहिए और समाज को सारी संस्था का। ऐसा न करें तो गोशवारा न बनानेवाले व्यापारी की तरह हमारा आध्यात्मिक दिवाला निकलेगा। अपने व्रतों

और कामों, उद्योगों में हम आगे बढ़ रहे है या पीछे छूट रहे हैं, यह हम न जानें तो हम यंत्र की तरह जड़ बन जायंगे और अंत में यंत्र से कम काम करेंगे, यानी अपनी हानि करेंगे।

यह गोशवारा हम किस रीति से तैयार करें ? इसका जवाब मैं कुछ प्रश्न लिखकर दे सकता हूं :

१. हम असत्य विचारते, बोलते या आचरण करते हैं ? हम यानी हरेक ।

२. ऐसा है तो वैसा करनेवाला कौन है ? कहां-कहां असत्य का आचरण हुआ ? इसके लिए उसने क्या किया ? आश्रम ने क्या किया ?

३. आश्रम के इतने बरस के जीवन में हम इस विषय में आगे बढ़े कि पीछे हटे ?

इस प्रकार सब व्रतों के विषय में विचार करके जहां-जहां खोट-खामी दिखाई दे वहां-वहां उपाय ढूंढें और करें ।

कार्यों, उद्योगों के विषय में भी यही कर्तव्य है । उनके विषय में तो दूना विचार करना है । आर्थिक दृष्टि से जमा-खर्च बराबर आता है ? हम मानते हैं कि भौतिक उद्योग में अगर दोनों मद बराबर आये तो यह संभव है कि वह धार्मिक रीति से चलाया गया हो, अगर घाटा आये या नफा रहे तो अवश्य कहीं नीति-भंग हुआ है । दूसरी दृष्टि यह है कि उस उद्योग के चलाने मे धर्म का ही विचार प्रधानतः रखा गया है ? आश्रम में यह बात आवश्यक है, क्योंकि उसके सारे उद्योग धर्म के अर्थात् सत्य के अधीन हैं ।

इन दोनों--व्रतों और उद्योगों--के विषय में यह विचार मन में आये बिना नहीं रहते :

१. आश्रम में ही एक-दूसरे के बीच सूक्ष्म चोरियां क्यों होती हैं ?

२. ऐसा वक्त कब और कैसे आयगा जब हममें एक-दूसरे का अविश्वास रहे ही नहीं ?

३. आश्रम में अब भी बाहर से चोर क्यों आते हैं ?

४. हमारा व्यक्तिगत परिग्रह क्यों बढ़ रहा है ?

५. हमने आसपास के गांवों के साथ क्यों सम्बन्ध नहीं जोड़ा ? वह किस तरह जोड़ा जा सकता है ?

६. आश्रम में अब भी बीमारी क्यों रहा करती है ?

७. आश्रम के मजदूर-वर्ग के लिए हमने क्या किया ? वे क्यों आश्रमवासी नहीं बने ? या मजदूर ही आश्रम में क्यों हों ? आश्रम में मालिक और मजदूर ये विभाग ही न हों ?

ऐसे सवाल अभी और बहुत-से सोच सकता हूं, पर मेरे विचार बता देने के लिए इतने काफी हैं। मैं चाहता हूं कि छोटे-बड़े सभी विचार करने लग जायं। रोज-नामचा रखने के मेरे आग्रह में यह हेतु तो था ही।

: ६ :

सप्ताह का सार

यरवदा-मंदिर
२-५-३२

अप्रेल मास के शुद्धि-सप्ताह पर भाई भगवानजी

का पत्र आया है । उसमें कपास की खराबी की ओर मेरा ध्यान खींचा गया है । उनको शक है कि कुछ लोगों ने जान-बूझकर तार[1] बढ़ाकर लिखे हैं । खराबी वह दो तरह की बताते हैं—एक तो टूटा हुआ सूत जितना चाहिए उससे अधिक है, दूसरे उतावली में कातने से सूत के नम्बर बहुत कम हैं ।

किसीने जान-बूझकर गलत तार लिखे हों तो इसको मैं भारी दोष मानता हूं । आश्रम के नाम को इससे धब्बा लगता है । गलत लिखनेवाले का यज्ञ ईश्वर की बही में तो लिखा ही नहीं जाता । हमारी बही में जो तार या गज लिखे गये हों उनकी कीमत तो कुछ भी नहीं । कीमत तो जो हो वही सच्ची है, लिखने से उसमें घट-बढ़ नहीं होती और सूत की कीमत तो कुछ आने ही होती है । असली कीमत तो कातने के पीछे रहने-वाले शुद्ध उद्देश्य की ही है । यह कीमत हम आंक सकते ही नहीं । यह तो दैवी बही में ही हो सकती है; क्योंकि मनुष्य के हेतु को कौन समझ सकता है ? फिर भी हमारे पास एक माप है । अगर अंत में ऐसे यज्ञ का सोचा हुआ फल न हो तो जानना चाहिए कि हममें कहीं-न-कहीं मलिनता है । इस दृष्टि से हरेक अपने-अपने काम का विचार कर ले और असत्य कहा हो तो नम्रतापूर्वक इसे कबूल कर शुद्ध हो जाय । आश्रम में हमसे किसीकी छिपी निगरानी नहीं हो सकती । बहुत-सा काम विश्वास पर ही चलता है । आश्रम दूसरी रीति

[1] अटेरन पर लपेटे हुए ४८ इंच सूत की नाप

से चल भी नहीं सकता। इसलिए सबको अपने धर्म का बुद्धिपूर्वक पालन करना है। गलत तार के साथ-साथ दूसरे दोष भी सब विचार लें। कातने में आलस किया था? बेगार टाली थी? वक्त चुराया था? टूटा हुआ सूत फेंक दिया था? यज्ञ की शर्त यह है कि याज्ञिक उसमें तन्मय हो जाय, कार्य में अपनी सारी होशियारी खर्च कर दे।

कोई यह न सोचे कि पूरे बरस चाहे जैसा व्यवहार कर शुद्धि-सप्ताह में ऊपर के नियम का पालन कर लेंगे। इतना याद रखना चाहिए कि आश्रम-जीवन ही यज्ञ-रूप होना चाहिए। उसमें कातना महायज्ञ है। सप्ताह में इतना ही अंतर है कि उस वक्त हम कातने में अधिक समय दिया करते हैं।

आगे के लिए मैं ये नियम सुझाता हूं:

१. बीस नंबर से नीचे का सूत काता जाय तो वह यज्ञ में न गिना जाय।

२. सूत की खराबी नियत माप से अधिक हो तो काता हुआ यज्ञ न माना जाय।

३. कस—मजबूती नियत सीमा से नीचे आय तो भी यज्ञ न गिना जाय।

यज्ञ-कार्य हो कि दूसरा कोई, संख्या या वज़न से सफाई, सचाई की कीमत ज्यादा होगी। पचास अपंग बैल हमारे सिर पर बोझ होंगे, एक मजबूत बैल हमारा पूरा काम कर देगा। पचास मोथरी छुरियां शाक नहीं काट सकतीं। एक धारदार छुरी पूरा काम कर देगी।

इसलिए हमें अपना ध्यान हर काम की पूर्णता की ओर देने की आदत डालनी चाहिए। आनेवाले सप्ताह में हम इस चीज पर ही ध्यान दें।

मैं देखता हूं कि कातने में कुछ लोगों का मन ऊबता है। दूसरे काम वे ज्यादा पसंद करते हैं। इसमें एक तो स्वाभाविक त्रुटि है। आदमी को जो काम रोज करना पड़ता है उससे वह ऊबता है और मन को फुसलाता है कि कोई दूसरा काम होता तो मैं न ऊबता। पर वह दूसरा काम भी अगर रोज का हो जाता है तो वह तीसरा मांगता है। फिर कातनेवाले का ध्यान जाने-बेजाने कताई से मिलनेवाली थोड़ी मजदूरी की ओर जाता है। आश्रम की दृष्टि से यह दोष है। कातने की मजदूरी कम-से-कम रखी जाती है। कारण यह कि इस वक्त तो यही एक धंधा है, जिसे करोड़ों कर सकें और उससे कुछ कमा भी लें। अतः इस काम को व्यापक करने के लिए हम सब यज्ञ-रूप में कातते हैं। यज्ञ में कल्पना यह है कि हम ईश्वरार्पण-बुद्धि से काम करते हैं और फल देना भगवान के हाथ है। इस रहस्य को समझकर कातने का यज्ञ सबको नित्य उसमें तन्मय होकर करना उचित है।

: ७ :

सफाई, सचाई, पवित्रता, स्वच्छता

यरवदा-मंदिर

६–५–३२

धीरू मगन चरखा लाया। उसपर आज मुझे इतना

आरंभिक काबू मिल गया कि मुझे संतोष हो । अतः मुझे विनोद सूझा । वल्लभभाई की तीखी आंखों ने तो उसके ऊपर लगा हुआ मकड़ी का एक जाला देख लिया और उन्होंने तुरंत उसका मजाक किया । मणिबहन के अति सुघड़पन का मूल मुझे यहीं मिला । जिस लिफाफे में मैं आश्रम की डाक बंद किया करता हूं, वह सरदार की हुनरमन्दी का एक नमूना है । जिसने इस लिफाफे को न देखा हो वह देख ले । उसमें सुघड़पन के साथ भारी किफायतशारी है । यह बता देना चाहिए कि यहां की डाक के लिए बहुत लंबे लिफाफे की जरूरत नहीं होती, इसलिए एक के दो हो जाते हैं । जो बादामी कागज पुड़ियों आदि में आता है वह रख लिया जाता है । उससे लिफाफों के लिए कागज निकल आता है ।

यह तो हुई प्रस्तावना । वल्लभभाई की आलोचना पर मैंने ध्यान दिया, पर मैं इस चरखे से काम लेने के लिए अधीर हो रहा था । डाक्टर कहा करते थे कि बाएं हाथ से चरखे का चक्र भी न घुमाओ । उसे पांव से चलाऊं तो चरखे का एक दिन भी शायद खराब न हो । अतः उसपर जल्दी काबू पा लेने की धुन में मैंने जाले की तह चढ़ी रहने दी । आज दाहिने हाथ से काम कर सकने की हिम्मत हुई तो चरखे की खराबी के ऊपर निगाह गई । एक के बजाय सात जगह जाला देखा । धूल तो जमी ही थी । पीतल के मोढ़िये पर तेल और धूल का मरहम-जैसा कीट जम रहा था । पिढई पर भी खासा मैल था । यह अक्षन्तव्य माना जाना चाहिए ।

चरखा दरिद्रनारायण का चक्र है, उनकी पूजा की यह मुख्य सामग्री है। उसपर मैल चढ़ाकर हम दरिद्रनारायण का अनादर करते हैं। सामान्य रीति से मंदिर, मस्जिद, गिरजा आदि स्थानों की सफाई रखी जाती है। हम तो मानते हैं कि हरेक स्थान मंदिर है। एक भी कोना नहीं है, जहां ईश्वर न हो। इसलिए हमारे मत से तो शयनगृह, भोजनगृह, पुस्तकालय, पाखाना सभी मंदिर हैं और मंदिर की तरह साफ-सुथरे रहने चाहिए। तब फिर चरखे का तो कहना ही क्या ! चरखे की शक्ति को हम सचमुच ही मानते हों तो बच्चे से लगाकर बूढ़े तक कोई भी उसे साफ रखे बिना न रहे।

बिल्ली की सफाई के बारे में तो मैं लिख ही चुका हूं। इस वक्त उसका अधिक अवलोकन हुआ है। कोई डेढ़ महीने पहले उसने दो बच्चे जने। उनकी रहन-सहन अलौकिक लगती है। तीनों शायद ही कभी अलग देखने में आते हों। जब बच्चे चाहते हैं तब मां दूध पिलाती है। दोनों साथ-साथ सटकर दौड़ते हैं, यह दृश्य भव्य होता है। मां को इसमें कोई शर्म नहीं लगती। बिल्ली सारे काम सबके सामने या सब जगह नहीं करती। बच्चे चलने-फिरने और खेलनेवाले हुए कि मां ने तुरंत उन्हें शौच का नियम सिखाया। खुद एकांत में जाकर नरम जमीन पंजों से खोदकर गढ़ा किया और बच्चों को उसके ऊपर बैठाया, फिर धूल से मैले को ठीक तौर से ढककर जमीन जैसी थी वैसी कर दी। अब बच्चे रोज इसी रीति से निबटते हैं। वे भाई-बहन हैं। चार

दिन पहले उनमें से एक जमीन खोदने लगा; पर वह कठिन थी। दूसरा मदद को पहुंचा और दोनों ने मिलकर जैसा चाहिए था वैसा गढ़ा खोद लिया। शौच हो लेने के बाद जमीन ढाककर चलते बने। ऐसे प्राणी—छोटे-बड़े—जो कर सकते हैं वह हम सहज ही क्यों न करें ?

शीर्षक में चार शब्द एक ही भाव को प्रकट करने के लिए व्यवहार किये गए हैं। हमें आत्मा का बोध है, इसलिए हमारी सफाई भीतर-बाहर दोनों की होनी चाहिए। पर अंदर की सफाई तो सचाई है। सचाई ही सबसे बड़ी पवित्रता, इसलिए, स्वच्छता है। हम बाहर से साफ-सुथरे हों और अंदर मैला हो तो या तो यह आडंबरमात्र है, या दंभ है, विषयभोग की निशानी है। इसलिए संयमी स्त्री-पुरुषों की स्वच्छता अंतर की पवित्रता का लक्षणरूप ही हो तो काम की है।

हमारा शरीर हमारा महामन्दिर है। हम उसमें बाहर से कोई मैल न भरें। अन्दर मन को कुविचारों से मलिन न करें। इस शौच को साधनेवाला अपने हर-एक काम में स्वच्छता प्रकट करेगा। यह उसके लिए स्वाभाविक वस्तु हो जानी चाहिए।

: ८ :

अद्भुत त्याग

यरवदा-मंदिर

१५-५-३२

अक्सर सामान्य पाठ्य-पुस्तकों से हमें अचूक उप-

देश मिल जाते हैं। इन दिनों मैं उर्दू की रीडरें पढ़ रहा हूं। उनमें कोई-कोई पाठ बहुत सुंदर दिखाई देते हैं। ऐसे एक पाठ का असर मुझपर तो भरपूर हुआ है। दूसरों पर भी वैसा ही हो सकता है। अतः उसका सार यहां दिये देता हूं।

पैगम्बरसाहब के देहांत के बाद कुछ ही बरसों में अरबों और रूमियों (रोमनों) के बीच महासंग्राम हुआ। उसमें दोनों पक्ष कें हजारों योद्धा खेत रहे, बहुत से जख्मी भी हुए। शाम होने पर आम तौर से लड़ाई भी बंद हो जाती थी। एक दिन जब इस तरह लड़ाई बंद हुई तब अरब-सेना में एक अरब अपने चाचा के बेटे को ढूंढने निकला। उसकी लाश मिल जाय तो दफनाये और जिंदा मिले तो सेवा करे। शायद वह पानी के लिए तड़प रहा हो, वह सोचकर इस भाई ने अपने साथ लोटाभर पानी भी ले लिया।

तड़पते घायल सिपाहियों के बीच वह लालटेन लिये देखता जा रहा था। उसका भाई मिल गया और सचमुच ही उसे पानी की रट लग रही थी। जख्मों से खून बह रहा था। उसके बचने की आशा थोड़ी ही थी। भाई ने पानी का लोटा उसके पास रख दिया। इतने में किसी दूसरे घायल की 'पानी-पानी' की पुकार सुनाई दी। अतः उस दयालु सिपाही ने अपने भाई से कहा, "पहले उस घायल को पानी पिला आओ, फिर मुझे पिलाना।" जिस ओर से आवाज आ रही थी, उस ओर यह भाई तेजी से कदम बढ़ाकर पहुंचा।

यह जख्मी बहुत बड़ा सरदार था। उक्त अरब उसको पानी पिलाने और सरदार पीने को ही था कि इतने में तीसरी दिशा से पानी की पुकार आई। वह सरदार पहले सिपाही के बराबर ही परोपकारी था। अतः बड़ी कठिनाई से कुछ बोलकर और कुछ इशारे से समझाया कि पहले जहां से पुकार आई है, वहां जाकर पानी पिला आओ। निःश्वास छोड़ते हुए यह भाई वायुवेग से दौड़कर जहां से आर्त्तनाद आ रहा था, वहां पहुंचा। इतने में इस घायल सिपाही ने आखिरी सांस ले ली और आंखें मूंद लीं। उसे पानी न मिला! अतः यह भाई, उक्त जख्मी सरदार जहां पड़ा था, वहां झटपट पहुंचा; पर देखता है तो उसकी आंखें भी तबतक मुंद चुकी थीं। दुःख-भरे हृदय से खुदा की बंदगी करता हुआ वह अपने भाई के पास पहुंचा तो उसकी नाड़ी भी बन्द पाई, उसके प्राण भी निकल चुके थे।

यों तीन घायलों में किसीने भी पानी न पिया, पर पहले दो अपने नाम अमर करके चले गये। इतिहास के पन्नों में ऐसे निर्मल त्याग के दृष्टांत तो बहुतेरे मिलते हैं। उनका वर्णन जोरदार कलम से किया गया हो तो उसे पढ़कर हम दो बूंद आंसू भी गिरा देते हैं, पर ऊपर जो अद्भुत दृष्टांत लिखा गया है उसके देने का हेतु तो यह है कि उक्त वीर पुरुषों के जैसा त्याग हममें भी आये और जब हमारी परीक्षा का समय आये तब दूसरे को पानी पिलाकर पियें, दूसरे को जिलाकर जियें और दूसरे को जिलाने में खुद मरना पड़े तो हँसते

चेहरे से कूच कर जायं।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पानी की परीक्षा से कठिनतर परीक्षा एक मात्र हवा की है। हवा के बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसी-से संपूर्ण जगत हवा से घिरा हुआ जान पड़ता है। फिर भी कभी-कभी ऐसा भी वक्त आता है जब अलमारी जैसी कोठरी के अंदर बहुत-से आदमी ठूंस दिये गए हों, एक ही सूराख से थोड़ी-सी हवा आ रही हो, उसे जो पा सके वही जिये, बाकी लोग दम घुटकर मर जायं। हम भगवान से प्रार्थना करें कि ऐसा समय आये तो हम हवा को जाने दें।

हवा से दूसरे नंबर पर पानी की आवश्यकता—प्यास है। पानी के प्याले के लिए मनुष्यों के एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने की बात सुनने में आई है। हम यह इच्छा करें कि ऐसे मौके पर उक्त बहादुर अरबों का त्याग हममें आये, पर ऐसी अग्निपरीक्षा तो किसी एक की ही होती है। सामान्य परीक्षा हम सबकी रोज हुआ करती है। हम सबको अपने-आपसे पूछना चाहिए—जब-जब वैसा अवसर आता है तब-तब क्या हम अपने साथियों, पड़ोसियों को आगे करके खुद पीछे रहते हैं? न रहते हों तो हम नापाक हुए, अहिंसा का पहला पाठ हमें नहीं आता।

: ९ :

बिल्ली-शिक्षिका

यरवदा-मंदिर
२२-५-३२

यहां की बिल्ली की सफाई-पसंदी के बारे में तो मैं लिख चुका हूं। उसको और उसके बच्चों को देखकर मुझे ऐसा दिखाई देता है कि बिल्ली आदर्श शिक्षिका है। बिल्ली के बच्चों को जो कुछ सीखना चाहिए वह यह माता बिना किसी उपद्रव के और बिना मुंह से एक शब्द बोले सिखा देती है। रीति निहायत आसान है। वह जो सिखाना चाहती है उसे खुद उनके देखते कर दिखाती है। बच्चे तुरन्त उसे करने लग जाते हैं। इस रीति से वे दौड़ना, पेड़ पर चढ़ना, सम्हालकर उतरना, शिकार करना, अपने शरीर को चाटकर साफ कर लेना सीख गये। मां जितना जानती है उतना बच्चे देखते-देखते सीख गये हैं।

मां बच्चों को अक्सर बेकार भटकने के लिए छोड़ती नहीं। उसका प्रेम मनुष्य के प्रेम-जैसा ही दिखाई देता है। वह बच्चों को बगल में लेकर सोती है। जब वे दूध पीना चाहते हैं तब खुद लेट जाती है और उन्हें दूध पीने देती है। कोई शिकार किया हो तो उसे बच्चों के पास ले आती है। वल्लभभाई रोज इनको दूध पिलाते हैं। छोटी-सी रकाबी में तीनों दूध पीते हैं। अक्सर मां देखा करती है, पर खुद उसमें हिस्सा नहीं बटाती। वह बच्चों के साथ बच्चों की तरह क्रीड़ा करती है, कुश्ती लड़ती है।

इससे मैंने यह सार निकाला कि हम बच्चों को शिक्षा देना चाहते हैं तो जो बात उनसे कराना चाहते हों वह खुद करनी चाहिए। बच्चों में अनुकरण की भारी शक्ति होती है। मुंह से कहा हुआ वह कम समझेंगे। हम उन्हें सत्य सिखाना चाहते हैं तो खुद हमें बहुत सावधानी से सत्य का पालन करना चाहिए। अपरिग्रह सिखाना हो तो हमें परिग्रह त्याग देना होगा। जो बात नीति के विषय में है वही शारीरिक कार्यों के विषय में भी है।

इस रीति से विचार करते हुए हम तुरंत देख सकते हैं कि आज जिस रीति से शिक्षा दी जाती है उसमें पैसे और समय के व्यय के परिमाण में फल नगण्य मिलता है। फिर हम यह भी देख सकते हैं कि बड़ी उम्र को पहुंचे हुए सभी आदमी शिक्षक के स्थान पर हैं। इस स्थान के साथ न्याय नहीं होता। इसका उचित आदर नहीं किया जाता। इससे शिक्षा ने वक्र रूप धारण कर लिया है।

बिल्ली आदि पशुओं को बुद्धि नहीं है या मनुष्य की जैसी बुद्धि नहीं है। वह जो करते हैं उससे तो हमें बहुत आगे जाना चाहिए; पर इसके शक्य होने के पहले भावी संतान की नीति के रक्षक होने के नाते, हमें खुद उसका पालन करना होगा। जिस बात को हम चाहते हों कि आनेवाली संतानें सीखें उसे खुद भी यथाशक्ति सीखना चाहिए।

आश्रम में जो लोग शिक्षक और शिक्षिका हैं वे इस दृष्टि से विचार करने लगें और जहां अमल करना उचित हो वहां करने लगें, इसी उद्देश्य से यह लेख लिखा है।

: १० :

मृत्यु का बोध

यरवदा-मंदिर

३०-५-३२

आश्रम में अबतक नीचे लिखी मौतें होने की बात मुझे याद है : फकीरी, ब्रजलाल, मगनलाल, गीता, मेघजी, वसन्त, इमामसाहब, गंगादेवी (इन सबकी तारीखें लिख रखना अच्छा होगा)।

फकीरी की मौत तो ऐसी हुई जो आश्रम को शोभा देनेवाली नहीं कही जा सकती। आश्रम अभी नया था। फकीरी पर आश्रम के संस्कार न पड़े थे। फिर भी फकीरी बहादुर लड़का था। मेरी टीका है कि वह अपने खाऊपन की बलि हो गया। उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी। मुझे ऐसा याद है कि आखिरी दिन उसकी बगल में सारी रात मैं ही बैठा रहा। सबेरे मुझे गुरुकुल जाने के लिए ट्रेन पकड़नी थी। उसे अरथीपर सुलाकर, पत्थर का कलेजा करके मैंने स्टेशन का रास्ता लिया। फकीरी के बाप ने फकीरी और उसके तीन भाइयों को यह समझकर मुझे सौंपा था कि मैं फकीरी और दूसरों के बीच भेद न करूंगा। फकीरी गया तो उसके तीन भाइयों को भी मैं खो बैठा।

ब्रजलाल बड़ी उम्र में, शुद्ध सेवाभाव से आश्रम में आये थे और सेवा करते हुए ही मृत्यु का आलिंगन करके अमर हो गये और आश्रम के लिए शोभारूप

हुए। एक लड़के का घड़ा कुएं से निकालते हुए डोर में फंसकर फिसल गये और प्राण तजे।

गीता गीता का पाठ शांति से सुनती हुई चली गई। मेघज नटखट लड़का माना जाता था; पर बीमारी में उसनेअद्भुत शांति रखी। बच्चे अक्सर बीमारी में बहुत हैरान होते हैं और पास रहनेवालों को हैरान करते हैं। मेघजी को लगभग आदर्श रोगी कह सकते हैं। वसंत ने बिल्कुल सेवा ली ही नहीं। प्राणघातक चेचक ने एक या दो दिन में ही जान ले ली। वसंत की मृत्यु पंडितजी और लक्ष्मीबहन की कठिन परीक्षा थी, उसमें वे पास हुए।

मगनलाल के विषय में क्या कहूं? सच पूछिये तो यह गिनती आश्रम में हुई मौतों की है, इसलिए मगनलाल का नाम यहां न होना चाहिए। पर यह नाम कैसे छोड़ा जा सकता है? उन्होंने आश्रम के लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्नि में तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्नि में तपे और कसौटी पर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनिया से कूच कर गये। आश्रम में जो कोई भी है वह मगनलाल की सेवा की गवाही देता है।

इमामसाहब का अकेला ही मुसलमान-कुटुम्ब अनन्य भक्ति से आश्रम में बसा। उन्होंने मृत्यु से हमारे और मुसलमानों के बीच न टूटनेवाली गांठ बांध दी है। इमामसाहब अपने-आपको इस्लाम का प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूप में आश्रम में आये। (यहां अमीना के दो बच्चे याद आते हैं। वे बहुत छोटे थे, इसलिए

उनके बारे में कोई कहने लायक बात नहीं । उनकी मृत्यु हमें संयम की आवश्यकता का पाठ अवश्य पढ़ाती है ।)

गंगादेवी का चेहरा अब भी मेरी आंखों के सामने फिरा करता है, उनकी बोली की भनक मेरे कानों में पड़ती है । उनके स्मरणों को याद करते अब भी मैं थका नहीं । उनके जीवन से हम सबको और बहनों को खास तौर से बहुत सबक सीखने हैं । वह लगभग निरक्षर होने पर भी ज्ञानी थीं । हवा, पानी बदलने के लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छा से जाने से अन्त तक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थीं । जो बच्चे उन्हें मिले, उनकी सम्हाल उन्होंने अपने बच्चे मानकर की । उन्होंने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हों, इसकी जानकारी मुझे नहीं है । उनको जीने का उल्लास न था, मरने का भय न था—उन्होंने हँसते हुए मृत्यु को गले लगाया । उन्होंने मरने की कला हस्तगत कर ली थी । जैसे जीने की कला है, वैसे ही मरने की भी कला है ।

इन सभी मृत्युओं का स्मरण अपनी जागृति के लिए कर गया हूं । पृथ्वी इस विश्व-मंडल में कण-समान है । उस कण के ऊपर हम देहरूप में तुच्छ कण हैं । हम एक बिल में रहनेवाली चींटियों को गिनने में असमर्थ हैं । चींटी से छोटे जंतुओं को तो हम देख भी नहीं सकते । विराट पुरुष के सामने तो हम अदृश्य जंतु से भी अधिक छोटे हैं । इससे इस देह को जो क्षणभंगुर कहा है वह अक्षरशः सत्य है । उसका मोह क्या ? उसके लिए एक भी

प्राणी को हम क्यों दुःख दें ? कांच से भी कमजोर--ज़रा-सी चोट से टूट जानेवाली--देह को बनाये रखने के लिए इतना उपद्रव क्यों मचायें ? मौत के मानी हैं इस देह से जीव का उड़ जाना। इस मौत का डर किसलिए ? उसका क्षण दूर रखने के लिए यह महाप्रपंच क्यों ? इन बातों पर फिर-फिर विचारकर छोटे-बड़े सब दिल से मौत का डर निकाल दें और देह में रहकर, जबतक वह रहे तबतक, सेवा के कार्य में उसे घिस डालें। ऐसी तैयारी करने की शक्ति हममें आये, इसके लिए नित्य गीता के दूसरे अध्याय के अंतिम उन्नीस श्लोक हमें रटने चाहिए। उनकी रटन दिल से हो तो जो चाहिए वह उसमें मौजूद है।

पुनश्च--यह लेख लिखा जा चुकने के बाद महादेव ने फातिमा काको और बालजी की माताजी के संस्मरण दिये हैं; पर मुझे जो सार खींचना था उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता, इसलिए यह लेख जैसा है वैसा ही रहने देता हूं। बाकी की तीनों मौतों के बारे में जो कुछ मैंने सुना है वह सब पुण्यस्मरण ही है।

: ११ :

तितिक्षा और यज्ञ के विषय में

यरवदा-मंदिर

९-६-३२

कोढ़ से पीढ़ित एक भाई ने नीचे लिखे हुए उद्‌गार प्रकट किये हैं--

"मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जा रहा है कि मुझ-जैसे रोगियों के लिए आसन, प्राणायाम आदि सामान्य क्रियाएं और यज्ञ करने के बाद प्राप्त किया हुआ अन्न इस रोग के लिए अच्छी-से-अच्छी चीज है। गीता इत्यादि के पाठ में, भजन गाने में, ध्यान में और कम-से-कम ५०० गज सूत कातने में मेरा समय जाता है। हमारा धर्म तितिक्षा सिखाता है, और तितिक्षा का अर्थ तो यह है—"सब दुखों को मन में बिना विरोध किये, बिना चिन्ता किये, बिना कलपे सहन करना।" यह सहन-शक्ति अपने-आप में उत्पन्न कर रहा हूं और यह यत्न करते हुए यह अनुभव कर रहा हूं कि अगर हम कोई भी यज्ञ-कार्य न करते हों तो ऐसी तितिक्षा आती नहीं। मुझ-जैसे आदमी से दूसरा-तीसरा यज्ञकार्य तो हो नहीं सकता, इसलिए आम रास्ता साफ करना, मैला साफ करना और कातना यही यज्ञ ईश्वर-कृपा से खुले हुए हैं और इनसे आनन्द प्राप्त कर लेता हूं और सहनशक्ति बढ़ा रहा हूं। पर अक्सर मन में यह विचार आता है कि अगर शरीर ऐसा हो जाय कि यज्ञ बिल्कुल हो ही न सके तो! शास्त्र तो पुकार-पुकारकर कहते हैं, आपने अक्सर कहा और लिखा है और मैंने अनुभव भी किया है कि यज्ञहीन जीवन मृतवत् हैं, भारभूत है, और जगत् के लिए त्रास उपजाने-वाला है। तब सवाल यह पैदा होता है कि अगर मनुष्य व्याधि से इतना अधिक घिर जाय कि उससे किसी भी प्रकार का यज्ञ हो ही न सके और उसका शरीर प्रतिक्षण दूसरों की सेवा पर ही टिक रहा हो तो ऐसे समय क्या कर्त्तव्य है! किसी-न-किसी शास्त्र में यह भी पढ़ा है कि जब आदमी को ऐसा असाध्य रोग हो जाय तब वह पानी में डूबकर या ऐसे ही किसी और उपाय से प्राण-त्याग करे।"

यह एक सुंदर पत्र का मेरी भाषा में किया हुआ खुलासा है। इस पत्र से अपने लोगों के लिए तो मैं इतना ही अर्थ निकालना चाहता हूं कि इस भाई ने जैसी लिखी है वैसी सहनशक्ति हम सब अपने में उत्पन्न करें और रोग से पीड़ित होते हुए भी शरीर जबतक बोझा उठा सके तबतक यज्ञ करते ही रहें। सहनशक्ति बढ़ाना और यज्ञ करना दोनों बातें बहुत पुरानी हैं। आश्रम में तो पद-पद पर हम इन्हें सुनते हैं; पर जब किसी अनुभवी

की कलम से यह बात हमारे पास आती है तब नई-सी मालूम होती है और उसमें खूब शक्ति भरी हुई होती है। कोढ़ से पीड़ित जनों से ऐसी भाषा और ऐसे अनुभव की आशा हम नहीं रखते। आम तौर से ऐसे लोग अगर लिखते हैं तो अपना दुखड़ा रोते हुए दिखाई देते हैं। यहां हमें एक निराली ही चीज का अनुभव हुआ है। इसीसे इस पत्र का सार मैंने आश्रमवासियों के लिए लिख दिया है। इसमें जो शंका उठाई गई है वह भी विचारने योग्य है।

यज्ञ का अर्थ हम परोपकार के लिए मन देकर किया हुआ कोई भी शारीरिक कर्म करते हैं; पर इससे यह मान लेना जरूरी नहीं है कि जो शरीर से अशक्त है वह यज्ञहीन है। जो शरीर से सर्वथा अशक्त है वह अपने मानसिक बल से अनेक प्रकार की सेवा कर सकता है और वह अवश्य यज्ञरूप मानी जायगी; पर ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जहां अपना होश-हवास इस काबिल न हो कि यज्ञ किया जा सके; वैसा मनोबल न हो फिर भी यज्ञकर्म करने की तीव्र इच्छा हो। देह के विषय में उदासीनता आ गई हो; दूसरों की सेवा लेने से दुःख होता हो; बीमारी प्राणघातक है, इसका अपने-आपको इतमीनान हो गया हो, मेरा खयाल है कि ऐसी हालत में जिसमें ऐसी शक्ति हो उसको प्राण-त्याग करने का पूर्ण अधिकार है; धर्म है, यह भी शायद कहा जा सके। पर धर्म है, यह कहना, सुननेवाले को आघात पहुंचानेवाला वाक्य समझा जायगा। जीनेवाले के मुंह

में दूसरों के लिए प्राण-त्याग धर्म है, कहना शोभा न देगा, और यह वाक्य सुननेवाला व्याधिग्रस्त मनुष्य शायद व्याकुल भी हो जाय। पर मैंने, यह मानकर कि ऐसा अनर्थ यहां होना संभव नहीं है, जो मुझे उचित जान पड़ा उसे मर्यादापूर्वक लिख डाला है। अगणित उपाय करके और असीम सेवा लेकर भी जीने की तृष्णा घट जाय और मृत्यु का भय दूर हो जाय तो यह चाहने योग्य बात है, यही दृष्टि रखकर लिखा है कि समझदार मनुष्य असाध्य रोग के समय प्राण-त्याग को धर्म माने तो यह मानने के लिए कोई कारण नहीं कि वह गलत ही कर रहा है।

: १२ :

प्रार्थना

यरवदा-मंदिर

१९-६-३२

प्रार्थना आश्रम का एक बुनियादी हिस्सा है। इसलिए इस चीज को हमें ठीक तौर से समझ लेना चाहिए। यह मन लगाकर न हो तो सब मिथ्या समझिये। भोजन करते समय आमतौर से हम किसीको सोता हुआ नहीं देखते। प्रार्थना भोजन से करोड़ गुना अधिक उपयोगी वस्तु है। इस वक्त कोई सोये तो यह अति दयाजनक स्थिति मानी जायगी। प्रार्थना छूट जाय तो मनुष्य को भारी दुःख होना चाहिए। खाना छूटे; पर प्रार्थना न छूटे। खाना छोड़ना कितनी ही बार शरीर के लिए लाभदायक होता है। प्रार्थना का छूट जाना कभी लाभ-

दायक हो ही नहीं सकता।

पर जो आदमी प्रार्थना में सोता हो, आलस्य करता हो, बातें करता हो, ध्यान न रखता हो, विचार को जहां-तहां भटकने देता हो उसने प्रार्थना छोड़ दी, यही कहा जायगा। उसने जो केवल शरीर से हाजिरी दी उसकी गिनती दम्भ में होगी। अर्थात् उसने दुहरा दोष किया; प्रार्थना छोड़ी और समाज को ठगा। ठगना यानी असत्य आचरण करना अर्थात् सत्यव्रत का भंग।

पर हमारे न चाहने पर भी नींद आये, आलस्य लगे तो क्या करना होगा? ऐसी बात होती ही नहीं। अगर हम खाट से उठकर सीधे प्रार्थना में जायं तब तो वहां ऊंघेंगे ही। प्रार्थना में जाने के पहले जाग्रत हो जाने, दातुन करने और ताजा रहने का निश्चय करना चाहिए। प्रार्थना में एक-दूसरे से सटकर न बैठना चाहिए। सोंटे की तरह सीधा बैठना चाहिए, धीमे-धीमे सांस लेना चाहिए और उच्चारण आता हो तो ऊंची आवाज से, नहीं तो मन-ही-मन जो श्लोक या भजन पढ़ा-गाया जा रहा हो उसे बोलना चाहिए। यह भी न आये तो राम-नाम लें। इतने पर भी शरीर काबू में न रहे तो खड़ा हो जाय। छोटा हो या बड़ा, इसमें किसीको लजाना न चाहिए। शर्म मिटाने के लिए बड़ों को चाहिए कि खुद ऊंघते न हों तो भी, जब तब खड़े हो जाया करें।

प्रार्थना में जो-कुछ कहा जाय उसे तुरंत सबको समझ लेना चाहिए। संस्कृत न आती हो तो भी अर्थ तो जान ही लेना और उसका मनन करना चाहिए।

: १३ :

अहिंसा का पालन कैसे हो?

यरवदा-मंदिर

२५-६-३२

सर्प को मारें या नहीं? स्त्री के ऊपर बलात्कार हो रहा हो तब आक्रमणकारी को मारें या नहीं? खेत में जीव मरते हैं यह जानते हुए भी हल चलायें या नहीं? अहिंसा का उपासक इन प्रश्नों को हल करने में न लगे। इन गुत्थियों को जब सुलझाना होगा तब वह अपने-आप सुलझ जायंगी, इस भुलावे में पड़ना अहिंसा को बिसर जाने के बराबर है।

अहिंसा के पालन का जिसको उत्साह हो वह अपने अंतर में और अपने पड़ोसियों को देखे। अगर उसके मन में द्वेष भरा हो तो समझे कि वह अहिंसा की पहली सीढ़ी पर ही नहीं चढ़ा। अपने पड़ोसी, साथी के साथ वह अहिंसा का पालन न करता हो तो वह अहिंसा से हजारों कोस दूर है।

इसलिए रोज सोते समय वह अपने-आपसे पूछे कि आज मैंने अपने साथी का तिरस्कार किया? उसको खराब खादी देकर खुद अच्छी ली? उसे कच्ची रोटी देकर खुद पकी हुई ली? अपने काम में चोरी करके साथी के ऊपर बोझ डाला? आज मेरा पड़ोसी बीमार था, उसकी तीमारदारी करने न गया; प्यासे बटोहियों ने मुझसे पानी मांगा, मैंने न दिया। मेहमान आये उनका

नमस्कार से भी सत्कार न किया; मजदूर का तिरस्कार किया, उसके ऊपर बिना बिचारे काम लादता रहा; बैल को पैना मारता रहा। रसोई में भात कच्चा था इससे खीझा—ये सारी बातें भारी हिंसा हैं। इस तरह नित्य के व्यवहार में हम स्वाभाविक रीति से अहिंसा का पालन न करें तो दूसरे विषयों में हम अहिंसा का पालन करने लायक ही न होंगे, या दूसरी बातों में उसका पालन करते हों तो उसकी कीमत बहुत कम होगी या कुछ भी न होगी। अहिंसा प्रतिक्षण काम करनेवाली प्रचंड शक्ति है। उसकी परीक्षा हमारे प्रतिक्षण के कार्य में, प्रतिक्षण के विचार में हो रही है। जो कौड़ी की फिक्र करेगा उसकी कोड़ी सलामत ही है; पर जिसने कौड़ी की परवा नहीं की उसने कौड़ी भी खोई और कोड़ी तो उसकी थी ही नहीं।

: १४ :

सत्य का पालन कैसे हो ?

यरवदा-मंदिर

३-७-३२

जो बात अहिंसा की है वही सत्य की समझिये। गाय को बचाने के लिए झूठ बोला जा सकता है या नहीं, इस उलझन में पड़कर अपनी नजर के नीचे जो रोज हो रहा है उसको भूल जायं तो सत्य की साधना न हो सकेगी, यों गहरे पानी में बैठना सत्य को ढांकने का रास्ता है। तत्काल जो समस्याएं रोज हमारे सामने

आकर खड़ी हो रही हैं उनमें हम सत्य का पालन करें तो कठिन अवसरों पर क्या करना होगा इसका ज्ञान हमें अपने-आप हो जायगा ।

इस दृष्टि से हममें से हरेक को केवल अपने-आप-को ही देखना है । अपने विचार से मैं किसीको ठगता हूं ? अगर मैं 'ब' को खराब मानता हूं और उसको बताता हूं कि वह अच्छा है तो मैं उसे ठगता हूं । बड़ा या भला कहलाने की इच्छा से जो गुण मुझमें नहीं हैं, उन्हें दिखाने की कोशिश करता हूं ? बोलने में अति-शयोक्ति करता हूं ? किये हुए दोष जिसको बता देने चाहिए उससे छिपाता हूं ? मेरा साथी या अफसर कुछ पूछता है तो उसके जवाब में बात को उड़ा देता हूं ? जो कहना चाहिए उसे छिपाता हूं ? इनमें से कुछ भी करते हैं तो हम असत्य का आचरण करते हैं, यों हर-एक को रोज अपने-आपसे हिसाब लेकर अपने-आपको सुधारना चाहिए । जिसको सच बोलने की आदत पड़ गई हो, ऐसी स्थिति हो गई हो कि असत्य मुंह से निकल ही न सके, वह भले ही अपने-आपसे रोज हिसाब न मांगे; पर जिसमें लेशमात्र भी असत्य हो या जो प्रयत्न करके ही सत्य का आचरण कर सकता हो उसे तो ऊपर बताई हुई रीति से यही या इस तरह के जितने सूझें उतने सवालों का जवाब रोज अपने-आपको देना चाहिए । यों जो एक महीना भी करेगा उसे अपने-आपमें हुआ परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देगा ।

: १५ :

विद्याभ्यास

यरवदा-मंदिर
१०–७–३२

आश्रम का इतिहास लिखते हुए शिक्षा के विषय में जो विचार प्रधान रूप से मेरे मन में चल रहे हैं, उनका निचोड़ दिये देता हूं। आश्रम में कितने लोगों को वाचन शिक्षण—पढ़ाई की तालीम—की कमी दिखाई देती है। मैं भी इस कमी को देख सकता हूं; पर शायद वह आश्रम के साथ जुड़ी ही रहेगी। उसके कारण की चर्चा तत्काल न करूंगा।

यह कमी हमें इसलिए दिखाई देती है कि हम विद्याभ्यास का अर्थ और उस अर्थवाला विद्याभ्यास प्राप्त करने की रीति नहीं जानते, या हमारा मन प्रचलित पद्धति ठीक है, यह मानकर काम कर रहा है। मेरी दृष्टि से प्रचलित विद्याभ्यास और उसे करने-कराने की रीति में बहुत दोष है।

सच्चा विद्याभ्यास वह है, जिसके द्वारा हम आत्मा को, अपने-आपको, ईश्वर को, सत्य को पहचानें। इस पहचान के लिए किसीको साहित्यज्ञान की आवश्यकता हो सकती है, किसीको भौतिक शास्त्र की, किसीको कला की; पर विद्यामात्र का उद्देश्य आत्म-दर्शन होना चाहिए। आश्रम में यह है। उसकी दृष्टि से हम अनेक उद्योग चला रहे हैं। ये सारे उद्योग मेरे अर्थ में शुद्ध

विद्याभ्यास हैं। आत्म-दर्शन के उद्देश्य के बिना भी यही धंधे चल सकते हैं। इस रीति से चलें तो वे आजीविका के या दूसरे साधन हो सकते हैं, पर विद्याभ्यास के पीछे समझ, कर्त्तव्यपरायणता, सेवा-भाव विद्यमान होता है। जहां समझ हो वहां बुद्धि-विकास होता ही है। छोटे-से-छोटा काम करते हुए शिवसंकल्प होना चाहिए। उसका कारण, उसका शास्त्र समझने का प्रयत्न होना चाहिए। शास्त्र हर काम का होता है। खाना पकाने का, सफाई का, बढ़ई के काम का, कताई का, जो हरेक उद्योग विद्यार्थी की दृष्टि से चलाता है वह उसका शास्त्र जानता है या रचता है।

हरेक आश्रमवासी इतना समझ ले तो वह जानेगा कि आश्रम एक महान् पाठशाला है, जिसमें शिक्षा के लिए कोई खास समय ही हो सो बात नहीं है, बल्कि सारा समय शिक्षण-काल है। हर आदमी, जो आत्म-दर्शन—सत्य-दर्शन—के भाव से आश्रम में बसता है, वह शिक्षक है और विद्यार्थी है। जिस चीज में वह निपुण है उसके विषय में वह शिक्षक है, जो उसको सीखना है उसके विषय में विद्यार्थी है। जिस विषय का हमें अपने पड़ोसी की अपेक्षा अधिक ज्ञान हो वह ज्ञान पड़ोसी को बिना किसी संकोच के देते ही रहें और जिसमें पड़ोसी को अधिक ज्ञान हो उसमें उससे बिना संकोच के लेते रहें। हम ऐसा किया करें तो हमें शिक्षकों का टोटा न पड़े और शिक्षण सहज और स्वाभाविक हो जाय। सबसे बड़ी शिक्षा चारित्र्य-शिक्षण है। ज्यों-

ज्यों हम यम-नियमों के पालन में बढ़ते जायं त्यों-त्यों हमारी विद्या—सत्य-दर्शन की शक्ति—बढ़ती ही जायगी।

तब अक्षर-ज्ञान का क्या हो? यह प्रश्न अब रहता ही नहीं। जो बात अन्य कार्यों के विषय में है वही अक्षरज्ञान के विषय में है। ऊपर के विवेचन से एक वहम की अर्थात् शिक्षाशाला-रूपी मकान और सिखानेवाले शिक्षक के—भ्रम की जड़ कट जाती है। हमें अक्षरज्ञान की जिज्ञासा हो तो हमें जानना चाहिए कि वह हमें अपने ही यत्न से प्राप्त करना है। आश्रम में उसके लिए अवकाश है ही। जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है उसे ठीक तौर से समझा सका होऊं तो अक्षरज्ञान की समस्या हल हो जाती है। जिसके पास वह है वह दूसरों को यथासमय दिये जायं और दूसरे लेते जायं।

: १६ :

व्यक्तिगत प्रार्थना

यरवदा-मंदिर

१७—७—३२

व्यक्तिगत प्रार्थना के विषय में मैं कुछ लिख तो चुका हूं, पर उसके महत्त्व के विषय में फिर कुछ लिखने की आवश्यकता जान पड़ती है। मुझे जान पड़ता है कि सामाजिक प्रार्थना में जो रस पैदा नहीं होता उसका एक कारण व्यक्तिगत प्रार्थना की आवश्यकता का अज्ञान है। सामाजिक प्रार्थना की व्यवस्था व्यक्तिगत प्रार्थना में से हुई है। व्यक्ति को प्रार्थना की भूख न हो

तो समाज को कहां से हो सकती है ? सामाजिक प्रार्थना का उपयोग भी व्यक्ति के लाभ के लिए है। व्यक्ति के आत्म-दर्शन में—आत्मशुद्धि में—सामाजिक प्रार्थना सहायक होती है, इसलिए व्यक्तिगत प्रार्थना का मूल्य सबको समझ लेना चाहिए। बच्चा ज्योंही समझने लगे, माता को चाहिए कि तुरन्त उसे प्रार्थना सिखा ही दे। सब धर्मों में यह सामान्य वस्तु है।

इस प्रार्थना के दो समय तो पक्के हैं : सवेरे उठते ही अन्तर्यामी को याद करना और रात में आंख मूंदते समय उसकी याद रखना। इस बीच जाग्रत स्त्री-पुरुष प्रत्येक क्रिया के संपादन में अन्तर्यामी को याद करेगा और साक्षी रखेगा। ऐसा करनेवाले से बुरा काम तो होगा ही नहीं और अंत में उसकी ऐसी आदत पड़ जायगी कि हर विचार का ईश्वर को साक्षी रखेगा और स्वामी बनायेगा। यह शून्यवत् हो जाने की स्थिति है, यों जिसके सामने हर वक्त ईश्वर रहता है, उसके हृदय में निरन्तर राम बसते हैं।

ऐसी प्रार्थना के लिए खास मंत्र या भजन की जरूरत नहीं होती। यद्यपि प्रत्येक क्रिया के आरंभ और अंत के लिए मन्त्र देखने में आते हैं, पर उनकी आवश्यकता नहीं है। चाहे जिस नाम से, चाहे जिस रीति से, चाहे जिस स्थिति में भगवान को याद करना है, ऐसा करने की आदत बहुत थोड़ों को ही होती है। बहुतों को हो तो दुनिया में पाप घट जाय, मलिनता घट जाय और आपस का व्यवहार शुद्ध हो जाय। इस शुभ स्थिति को

पहुंचने के लिए हर आदमी को जो दो वक्त मैंने बताये वे तो रखने ही चाहिए, दूसरे वक्त भी खुद बांध लें और नित्य उसमें वृद्धि करते जायं, जिससे अन्त में हर सांस से रामनाम निकले।

इस व्यक्तिगत प्रार्थना में वक्त बिल्कुल नहीं जाता। उसमें वक्त की जरूरत नहीं, सचेत रहने की जरूरत है। जैसे आंख मूंदने में समय जाता नहीं जान पड़ता वैसे ही व्यक्तिगत प्रार्थना में भी वह जाता नहीं मालूम होता। जैसे पलकें अपना काम करती हैं, यह हम जानते है, वैसे ही प्रार्थना हृदय में चलनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना करनेवाले को याद रखना चाहिए कि जिसका हृदय मलिन हो वह मलिनता को बनाये रखकर प्रार्थना नहीं कर सकता। अर्थात् प्रार्थना के समय उसको मलिनता का त्याग करना ही चाहिए। वह कोई गन्दा काम कर रहा हो और कोई उसे देख ले तो जैसे वह शर्मायेगा वैसे ही ईश्वर के सामने भी गन्दा, बुरा काम करते हुए उसे शर्माना चाहिए। पर ईश्वर तो सदा हमारे हर काम को देखता है, हर विचार को जानता है। इसलिए ऐसा एक भी क्षण नहीं है जब उससे छिपाकर कोई काम या विचार किया जा सके। इस तरह जो हृदयपूर्वक प्रार्थना करेगा, वह अन्त में ईश्वरमय ही होगा, अर्थात् निष्पाप होगा।

: १७ :

देख-रेख की अनावश्यकता

यरवदा-मंदिर
२४-७-३२

यह शीर्षक चौंकानेवाला है। इसका आशय यह सूचित करना नहीं है कि हम इसी वक्त बिना किसी देख-रेख के अपना काम-काज चला सकते हैं। हां, यह आशय अवश्य है कि देख-रेख घटाते जाने और अंत में उसको बिल्कुल ही दूर कर देने का उपाय सुझाये।

धार्मिक संस्था में देख-रेख की जितनी जरूरत पड़े, उतनी धर्म की न्यूनता है। उसके पीछे अविश्वास होता है। अविश्वास धर्म का—आत्मा का—घातक है। ईश्वर सबको देखनेवाला है, फिर हमें किसकी देख-रेख रखनी है? जिसने रसोई या पाखाने की सफाई अपने ऊपर ली हो वह अपने-आप ठीक तौर से अपना काम क्यों न करे? करेगा यह विश्वास हम क्यों न रखें? जो निगरानी के बिना लिया हुआ काम पूरा या ठीक न करे वह आश्रम छोड़ दे, यह सहन किया जा सकता है; पर निगरानी असह्य लगनी चाहिए। हमारे रोज के काम का आत्म-परीक्षण हमारी देख-रेख है।

यहां देख-रेख का अर्थ समझ लेना चाहिए। बच्चे को तो देख-रेख चाहिए ही। उसे करना आता नहीं, इसलिए सौंपे हुए काम को बताना जरूरी होता है। बड़ा भी, उसे कोई खास काम न आता हो तो, देख-रेख

मांगता है, चाहता है। सच पूछिये तो इस तरह की देख-रेख नहीं, बल्कि शिक्षक की सहायता है। इस सहायता के सहारे नया सीखनेवाला आगे बढ़ता है।

पर जो देख-रेख रखवाली के रूप में है, वह दोष-पूर्ण है। दूसरा आदमी अपना काम ठीक तौर से करता है या नहीं, इसकी निगरानी रखना बुरा है। बच्चों की भी ऐसी ही निगरानी रखना बुरी बात है। इस बुराई से निकल जाने का रास्ता हमें ढूंढना चाहिए।

इस तलाश की पहली सीढ़ी यह है; जहां-जहां देख-रेख रखी जाती हो उन कार्यों को नोट कर लो। उनमें कौन-कौन है यह देख लो। उनके साथ मशवरा करो और फिर उन्हें उनके विवेक पर छोड़ दो। संस्थापक और दूसरों को इसका पूरा भान होना चाहिए कि परमात्मा बहुत बड़ा साक्षी है। बच्चों को भी ईश्वर की उपस्थिति का भान अभी से होना चाहिए। यह कोई वहम की चीज नहीं है, अनिश्चित नहीं है। अपने अस्तित्व पर अपने निजी अस्तित्व का जितना विश्वास हमें है, उतने ही विश्वास की यह बात है।

इस सुझाव पर सब लोग विचार करते रहें और उसपर जहांतक अमल करना शक्य है वहांतक करना अपना धर्म है।

: १८ :

गीता कंठ करो

यरवदा-मंदिर
३१–७–३२

गीता को कंठ करने के विषय में मैं बहुत बार लिख

चुका हूं, कह चुका हूं । मेरे अपने लिए यह न हो सका, इसलिए यह कहना मुझे शोभा नहीं देता । फिर भी इस बात को बार-बार कहते मुझे शर्म नहीं मालूम होती, इसलिए कि उसका लाभ मैं समझता हूं । मेरी गाड़ी ज्यों-त्यों चल गई है, क्योंकि एक बार तो मैं तेरहवें अध्याय तक कंठ कर गया था और गीता का मनन तो बरसों से चल रहा है । इसलिए यह मान लिया जा सकता है कि उसकी छाया के नीचे मेरा कुछ निर्वाह हो गया । पर मैं उसे कंठ कर सका होता, अब भी उसमें अधिक गहराई में पैठ सका होता तो हो सकता है, मैंने बहुत अधिक पाया होता । पर मेरा चाहे जो हुआ हो और हो, मेरा समय बीता हुआ माना जा सकता है या मानना चाहिए, यद्यपि मुझे सहज ही इसका संयोग मिल जाय तो गीता कंठ करने का प्रयत्न आरम्भ कर दूं ।

यहां गीता का अर्थ थोड़ा विस्तृत करना चाहिए। गीता, अर्थात् हमारा आधाररूप ग्रंथ । हममें से बहुतों का आधार गीता है, इसलिए मैंने गीता का नाम लिया है । पर अमतूल (अमतुस्सलाम), अमीना या कुरेशी गीता के बदले कुरानशरीफ पूरा या उसका कोई भाग कंठ कर सकते हैं । जिन्हें संस्कृत न आती हो, जो अब उसे सीख न सकते हों वे गुजराती या हिन्दी में कंठ करें । जिन्हें गीता पर आस्था न हो और दूसरे किसी धर्मग्रंथ पर हो वे उसे कंठ करें ।

और कंठ करने का अर्थ भी समझ लीजिये । जिस चीज को हम कंठ करें उसके आदेशानुसार आचरण

करने का हमारा आग्रह होना चाहिए। वह मूल सिद्धांतों का घातक न हो। उसका अर्थ हम समझ चुके हों।

इसका फल है। हमारे पास ग्रंथ न हो, चोरी हो जाय, जल जाय, हमें भूल जाय, हमारी आंख चली जाय, हम वाक्शक्ति से रहित हो जायं; पर समझ बनी हो—ऐसे और भी दैवयोग सोचे जा सकते हैं—उस वक्त अगर अपना प्रिय आधाररूप ग्रंथ कंठ हो तो वह हमारे लिए भारी शांति देनेवाला हो जायगा और मार्गदर्शक होगा, संकट का साथी होगा।

दुनिया का अनुभव भी यही है। हमारे पुरखे—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी—कुछ विशेष पाठ कंठ किया करते थे। आज भी बहुतेरे करते हैं। इन सबके अमूल्य अनुभव को हम फेंक न दें। इसमें कुछ अंशों में हमारी श्रद्धा की परीक्षा है।

: १९ :

वाचन और विचार–१

यरवदा-मंदिर

१४–८–३२

पाठशालाओं में हम पढ़ते हैं—'वाचन मिथ्या बिना विचार।'[1] यह उक्ति शब्दशः सत्य है। हमें किताबें पढ़ने का शौक हो तो यह अच्छा कहा जायगा। आलस्यवश जो पढ़ता नहीं, बांचता नहीं वह अवश्य मूढ़ माना जायगा; पर जो खाली-खाली पढ़ा ही करता है, विचार

[1] 'भणतर मिथ्या वगर विचार'

नहीं करता, वह भी लगभग मूढ़-जैसा ही रहता है। इस पढ़ाई के एवज़ में कितने ही आंख खो बैठते हैं, वह अलग है। निरा वाचन एक प्रकार का रोग है।

हममें बहुतेरे निरी पढ़ाई करनेवाले होते हैं। वे पढ़ते हैं; पर गुनते नहीं, विचारते नहीं। फलतः पढ़ी हुई चीज पर अमल वे क्यों करने लगे? इससे हमें चाहिए कि थोड़ा पढ़ें, उसपर विचार करें और उसपर अमल करें। अमल करते वक्त जो ठीक न जान पड़े उसे छोड़ दें और आगे बढ़ें। ऐसा करनेवाला थोड़ी पढ़ाई से अपना काम चला सकता है, बहुत-सा समय बचा लेता है और मौलिक कार्य करने की जिम्मेदारी उठाने के योग्य बनता है।

जो विचार करना सीख लेता है उसको एक लाभ और होता है, जो उल्लेखनीय है। पढ़ने को हमेशा नहीं मिल सकता। यह देखने में आता है कि जिसे पढ़ने की आदत पड़ गई हो उसे पढ़ने को न मिले तो वह परेशान हो जाता है। पर विचार करने की आदत पड़ जाय तो उसके पास विचारपोथी तो प्रस्तुत रहती ही है, अतः उसे परेशानी में नहीं पड़ना पड़ता।

विचार करना 'सीखना', यह शब्दप्रयोग मैंने जान-बूझकर किया है। सही-गलत, निकम्मे विचार तो बहुतेरे किया करते हैं। वह तो पागलपन है। कितने ही विचारों के भंवर में पड़कर निराश हो जाते हैं, आत्म-घात भी कर बैठते हैं। ऐसे विचार की बात यहां नहीं की जा रही है। इस समय तो मेरी सूचना पढ़े हुए पर

विचार करने तक है। मान लीजिये कि आज हमने एक भजन सुना या पढ़ा, उसका विचार करना, उसमें क्या रहस्य है, उससे मुझे क्या लेना है, क्या नहीं लेना है, इसकी छानबीन करना, उसमें दोष हों तो उन्हें देखना, अर्थ न समझ में आया हो तो उसे समझना—यह विचार-पद्धति कही जायगी। यह मैंने सादे-से-सादा दृष्टान्त लिया है। इसमें से हरेक अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार दूसरा दृष्टान्त घटित कर ले और आगे बढ़े। ऐसा करनेवाला अंत में आत्मानंद भोगेगा और उसका सारा वाचन फलेगा।

: २० :

वाचन और विचार–२

यरवदा-मंदिर

२१–८–३२

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहां जो सोवत है?"—अरे मुसाफिर, उठ। सवेरा हुआ। अब रात कहां है जो तू सोता है? इतना समझकर जो बैठ जाता है उसने पढ़ा, पर विचार नहीं किया; क्योंकि वह सवेरे के समय उठकर ही अपने-आपको कृतार्थ मान लेता है। पर जो विचार करना चाहता है वह तो अपने-आपसे पूछता है—मुसाफिर यानी कौन? सवेरा हुआ के मानी क्या हुए? रात गई यानी? सोना क्या है? यों सोचे तो रोज एक पंक्ति से अनेक अर्थ निकाल ले और समझे कि मुसाफिर यानी जीवमात्र। जिसे ईश्वर

पर आस्था है उसके लिए सदा सवेरा ही है। रात के मानी आराम भी हो सकते हैं और जो ज़रा भी गाफिल—लापरवा——रहता है, उसपर यह पंक्ति घटित होती है। जो झूठ बोलता है वह भी सोया हुआ है। यह पंक्ति उसे भी जगानेवाली है। यों उससे व्यापक अर्थ निकालकर आश्वासन प्राप्त किया जा सकता है। यानी एक पंक्ति का ध्यान मनुष्य के लिए पूरा आध्यात्मिक पाथेय हो सकता है और चारों वेद कंठ कर जानेवाले और उसका अर्थ भी जाननेवाले के लिए वह बोझस्वरूप बन सकता है। यह तो मैंने एक जबान पर चढ़ी हुई मिसाल दे दी है। सब अपनी-अपनी दिशा चुनकर विचार करने लग जायं तो जीवन में नया अर्थ निकालेंगे और नित्य नया रस लूटेंगे।

: २१ :

सविचार कार्य और विचार-रहित कार्य—१

यरवदा-मंदिर

२८—८—३२

वाचन और विचार के विषय में तो मैं लिख चुका। आज कार्य और विचार के विषय में थोड़ा लिखता हूं। मेरी दृष्टि से विचार करने की कला सच्ची शिक्षा है। यह कला हाथ आ जाय तो दूसरी सारी कलाएं उसके पीछे सुंदर रीति से सज जायं।

जिस स्त्री ने नेवले के मुंह में लहू लगा देखकर उसपर अपना भरा घड़ा फोड़ा, उसने बहुत ही अविचार का

काम किया और अंत में अपने बच्चे को बचानेवाले का वध करने के लिए उसे बहुत पछताना पड़ा और इसका दाग जिन्दगी भर मिटा न सकी। घड़ा फूटा, पानी गया, यह तो हिसाब में लेने लायक भी न समझा जायगा। इतना भारी अपराध उसने किया।

यह दृष्टान्त तो अंतिम कहा जा सकता है; पर हमारा ध्यान इससे मूल विषय पर ठीक बैठ सकता है। आश्रम में जितने काम हम करते हैं, विचारपूर्वक करें तो शांति बढ़े, करनेवाले की दक्षता बढ़े, बहुत-सा वक्त बचे और काम में नित्य नया रस पैदा हो। हम जानवर के जरिए रहंट चलाते हैं। उसे बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है; पर उसके ज्ञान में वृद्धि नहीं होती, अपने काम में उसे रस नहीं आता। आदमी सिर पर खड़ा न हो तो वह रहंट की चर्खी घुमाये नहीं। पर हम तो मनुष्य हैं! मनुष्य के मानी हैं विचार करनेवाला, ज्ञानवान। हमें पशु की भांति तो नहीं रहना या व्यवहार करना चाहिए।

हम पाखाना साफ करते हैं। विचार के बिना करें तो यह काम नीचा मालूम होगा, खराब लगेगा और मन यही चाहेगा कि उससे कब छूटें। विचारपूर्वक करें तो जानेंगे कि यह करना हमारा धर्म है। साफ करने के मानी हैं पूरी सफाई करना, पाखाने को ठीक तौर से ढकना, साफ करने के औजारों को साफ रखना, पाखाने की जांच करना, उसमें खून हो, बदबू हो, कीड़े हों तो समझें कि कोई बीमार है, और कौन है इसका पता लगा लें। हरेक पाखाने का कौन-कौन इस्तेमाल करता है

इसका पता तो हमें होता ही है। पाखाना साफ करते वक्त मालूम हो कि वह धूल से ठीक तौर से ढका नहीं गया है, मैला बाहर पड़ा है, पेशाब भी नीचे पड़ा है, तो यह दोष करनेवाले को ढूंढें और उसको विनयपूर्वक समझावें। यह सब तो उसीसे हो सकता है जो सेवा भाव से यह काम करें। इसलिए ज्यों-ज्यों अपने कार्य में विचार से काम लेता जायगा त्यों-त्यों वह सुधरेगा, सहल होगा और मन ऊबने के बजाय उसमें रस आवेगा। पाखाने के बारे में जितनी बातें सोची जा सकती हैं सब यहां नहीं दी हैं, उनका नमूना भर दे दिया है।

कताई के यज्ञ को लें तो उसके विषय में भी यदि विचारमय काम हो तो हमें उसमें से रस के घूंट मिलेंगे और कताई की कला की प्रगति की हद ही न होगी। सब विचारपूर्वक कातें तो हम बहुतेरी खोजें करें और सूत अच्छे-से-अच्छा निकालें।

यही बात प्रार्थना की है। प्रार्थना क्या है ? किसलिए की जाती है ? मौन क्यों रखते हैं ? प्रार्थना संस्कृत में क्यों हो ? गुजराती, मराठी या हिन्दी में क्यों न की जाय ? आदि अनेक बातों का विचार करके हम प्रार्थना को प्रचंडशक्ति बना सकते हैं, पर हम उसके विषय में कम-से-कम विचार करते हुए जान पड़ते हैं।

योगः कर्मसु कौशलम्—यह गीता का विचार प्रौढ़ है। योग का अर्थ है जुड़ना। ईश्वर के साथ जुड़ जाने का नाम योग है। गीतामाता सिखाती है कि कर्मकौशल से वह सहज ही सधता है। कौशलप्राप्त करनेवाले को

अपने कर्म में तन्मय अर्थात् विचारमय होना ही चाहिए। तकली पर कातनेवाले विचारक ने चरखे का महान् आविष्कार किया। चरखा कातनेवाले ने हजारों तकली-वाला चरखा बनाया। मेरी दृष्टि से इसमें उसकी बुद्धि खूब चली; पर हृदय नहीं चला। इसलिए विचार भी सद्विचार, धार्मिक भावनामय होना चाहिए। फिर भी विचारशून्यता की तुलना में तो यंत्र का आविष्कार करनेवाले की विचारशक्ति पूजने योग्य ही मानी जायगी।

: २२ :

सविचार कार्य और विचार-रहित कार्य—२

यरवदा-मन्दिर
११-९-३२

काम करने में भी विचार-शक्ति का पूरा उपयोग करने के विषय में लिख चुका हूं। उस पत्र के अन्त में एक विचार किया था, जिसका कुछ विस्तार करना जरूरी है। उसमें मैंने यह सुझाया था कि विचार समाजपोषक होता है और समाजनाशक भी होता है, दैवी होता है और आसुरी भी होता है। एक आदमी चरखा कातते हुए रोज उसमें ऐसे सुधार करने की बात सोचता है जिससे लाखों-करोड़ों कातनेवालों को आराम मिले, लाभ हो। दूसरा सोचता है कि मैं खुद ही एक चरखे के जरिए लाखों के बराबर सूत कात लूं तो कैसा अच्छा हो! पहले का विचार समाज-पोषक, दैवी है। दूसरे का आसुरी है, समाजहित-विरोधी है। इसलिए हरेक काम

करते हुए हम विचार करें, इतना ही काफी नहीं है। वह विचार सबके हित का भी हो, केवल अपने ही स्वार्थ का नहीं। सच पूछिये तो जो केवल अपने ही स्वार्थ के लिए प्रयास करता है वह दूसरों का नुकसान तो करता ही है, अपना स्वार्थ भी अंत में नहीं साध सकता।

इस दृष्टिबिन्दु को सामने रखकर हरेक अपने हर काम, हर उद्योग के विषय में विचार करे और बुद्धिपूर्वक काम करे तो वह उत्तम शिक्षा लेता है, अपने काम को रसमय बनाता है, अपनी बुद्धि का विकास करता है, अपने हृदय को विशाल बनाता और शुद्ध करता है, कार्य में कुशलता प्राप्त करता है और उसमें ऐसी खोजें और सुधार करता है, जिनसे समाज का कल्याण हो। फल यह होता है कि अपने काम में उसका रस बढ़ता है, इससे उसको आनन्द होता है, थकावट नहीं आती और कार्य कलामय हो जाता है, फिर भले ही वह पाखाना साफ करना हो, गली-सड़क की सफाई करना हो, साग-तरकारी काटना हो या गोशाला का हो, किताबें लिखने का हो या कोई भी हो। जिसकी दृष्टि पारमार्थिक बन जाती है उसे एक भी काम नीचा या नीरस नहीं जान पड़ता। जो सामने आये उसीमें वह ईश्वर को देखेगा, उसीकी सेवा देखेगा। उसका रस काम के, जाति-वर्ग के ऊपर अवलम्बित नहीं होता। उसका रस उसके अन्तर से, उसकी कर्त्तव्यपरायणता से निकलता है। जो अनासक्तियोग को समझना, साधना चाहता हो उसको हरेक काम इसी तरह करना उचित है।

गांधीजी की अन्य पुस्तकें

१. गीताबोध
२. अनासक्ति-योग
३. सर्वोदय
४. मंगल प्रभात
५. नीति-धर्म
६. ग्रामसेवा
७. हमारी मांग
८. एक सत्यवीर की कथा
९. संक्षिप्त आत्मकथा
१०. हिन्द-स्वराज्य
११. बापू की सीख
१२. गांधी-शिक्षा (तीन भाग)
१३. आज का विचार
१४. अनीति की राह पर
१५. ब्रह्मचर्य (दो भाग)
१६. देश-सेवकों के संस्मरण

चालीस नये पैसे